दो शब्द

गांधीजो ऐसे महामानव थे, जिनका कहना था कि 'जिस बात में किसी मनुष्य का कल्याण समाया हुआ है, उसे मैं कभी नहीं भूलता।' उन्हें देश और काल को सीमाओं से बाँधा नहीं जा सकता। वे किसीके अहित में से अपना हित नहीं चाहते थे, वरन् सबके हित में अपने देश का हित चाहते थे। वे बुराई का विरोध करके भी बुरे आदमी में अन्तर्निहित मनुष्य को प्यार करते थे। असत्य का नम्रता से प्रतिकार और सत्य का दृढ़ता से पालन उनके जीवन का मूलमन्त्र था। अंग्रेजों से 'क्विट इण्डिया' की बात कहकर भी उनके जीवन की प्रार्थना थी : 'हे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, पारसी, ईसाई और अंग्रेज, तुम सब आओ। मनुष्यों का महासागर भारत तुम सबका स्वागत करता है।' वे एक ऐसे मसीहा थे, जिन्होंने अखिल मानवता को प्यार करते हुए उसे आगे बढ़ने का रास्ता दिखाया। आज भी उनके विचारों में युग-युग का मार्ग-दर्शन करने की क्षमता है। मैंने इस पुस्तक में अखिल मानवता को प्यार करनेवाले गांधीजी के जीवन के ऐसे ही मर्मस्पर्शी संस्मरण सँजोये हैं।

'गांधी-शताब्दी-वर्ष' में पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित करने के लिए मैं 'सर्व सेवा संघ' का हृदय से आभारी हूँ।

साहित्य कुटीर,

ब्राह्मणपुरी, खण्डवा —रामनारायण उपाध्याय

१-७-'६९

प्र का श की य

गांधीजी हमारे राष्ट्र-पिता थे और देशवासियों के बापू। उनका व्यक्तित्व महान् था, सर्वाङ्गीण था। उनका दर्शन और चिन्तन सार्वकालिक और जागतिक था। वे सत्यं-शिवं-सुन्दरम् और सत्य-प्रेम-करुणा के साकार स्वरूप थे। वे जीवित राष्ट्र थे।

बापू पर अनेक लोगों ने अनेक रूपों में अपनी भावभीनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित की हैं। उन्हींमें से छोटा-सा एक प्रयास यह भी है। इसमें बापू के जागतिक, राष्ट्रीय, क्रान्तिकारी, दार्शनिक, प्रेमल, विनोदी आदि अनेकमुखी व्यक्तित्वों का मधुर दर्शन होता है।

आशा है, हमारे पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

'युग-पुरुष गांधी' दस-पाँच मिनट में देख गया। एक अच्छे मनुष्य ने, अच्छे विषय पर किताब लिखी है, तो वह अच्छी ही हो सकती है।

महाराष्ट्र-यात्रा
२१-४-'६४

विनोबा
२१-४-'६४

अनुक्रम

जीवन के कलाकार : १ :

गांधीजी जीवन के कलाकार थे। 'कला कला के लिए' या जीवन से भिन्न कला में उनका विश्वास नहीं था। उनका कहना था : "कला का स्थान जीवन में है।" इसीसे वे केनवास पर बने चित्र में नहीं, वरन् मनुष्य के चेहरे पर सुर्खी लाने में ही वास्तविक कला का दर्शन करते थे। वे जीवन के ऐसे विराट् द्रष्टा थे कि उन्हें झोपड़ी में भी काव्य और चरखे के स्वर में मनुष्य की मुक्ति का संदेश सुनायी देता था।

एक जगह टेढ़ा, तो सब जगह टेढ़ा

वे अपना प्रत्येक कार्य नियमित व्यवस्थित ढंग से करने के अभ्यस्त थे। उनके कार्यों को देखकर घड़ी का समय मिलाया जा सकता था। उनका कहना था कि हमारे उठने-बैठने में भी हमारी सभ्यता का दर्शन होना चाहिए। हमारा कोई भी कार्य बिना कारण नहीं होना चाहिए। यदि कोई मुझसे यह पूछे कि तुमने यह कलम यहाँ से उठाकर वहाँ क्यों रखी, तो मैं उसका भी कारण बता सकता हूँ। एक बार उनकी पीठ के पीछे लगाये जानेवाले तकिये के बारे में महादेवभाई ने कहा कि यदि इसे आप बजाय सीधा लगाने के टेढ़ा करके लगाया करें, तो वह गिरेगा नहीं और आपको आराम भी मिलेगा। इस पर उन्होंने कहा था कि आराम तो मिले, लेकिन सच्ची खूबी सीधा रखने में ही है। यह नियम है कि यदि किसी चीज को सीधा रखें, तो उसके सहारे की सभी चीजों को सीधा रहना पड़ेगा और एक मामले में टेढ़ा रखा, तो फिर कई दोष घुस आयेंगे।

रेडियो के भजन से चरखे का संगीत श्रेष्ठ

उनकी अन्तिम जयन्ती के दिन रेडियो से सुन्दर कार्यक्रम प्रसारित करने का आयोजन था। मनुबहन ने कहा : "बापू, आज तो आप

रेडियो सुनिये।" वे बोले : "उसमें क्या सुनना, ये रेडियो के भजन सुनने के बजाय चरखे का संगीत न सुनें ?"

रेडियो-समाचार के बारे में एक बार उन्होंने कहा था : "आध घण्टे के अन्दर दुनिया के सभी हिस्सों से खबरें प्राप्त करने की मुझमें कोई उत्कंठा नहीं। इससे मनुष्य के पास स्वयं विचार करने का समय बहुत कम रह जाता है। मुझे अपने निकट-से-निकट वातावरण में—उसके बनाने में दिलचस्पी लेनी चाहिए और उसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिए।"

वर्षा के जल में प्रभु-कृपा का दर्शन

उनका मन प्रकृति से कुछ इस कदर तदाकार था कि वे उसीमें वास्तविक सौन्दर्य का दर्शन करते थे। एक बार जब उनसे एक जल-प्रपात देखने के लिए कहा गया, तो उन्होंने अपना काम छोड़कर वहाँ जाने से इनकार कर दिया था। जब साथियों ने आग्रह करते हुए कहा : "बापू, वहाँ सबसे अधिक ऊँचाई से जल गिरता है।" तो उन्होंने मुस्कराते हुए कहा था : "क्या वर्षा के जल से भी अधिक ऊँचाई से ? मुझे तो उसीमें आनन्द आता है।" जो चिलचिलाती धूप और बरसते मेह में भी प्रभु-कृपा के आशीर्वाद का दर्शन करता हो, उसे और किस सौन्दर्य के लिए लुभाया जा सकता है ?

बोलते चित्र

एक बार गुजरात में आयोजित एक चित्रकला-प्रदर्शनी देखने के बाद बापू ने चित्र-कला के सम्बन्ध में कहा था : "निस्सन्देह आज सुबह प्रदर्शनी में मैंने जो कुछ देखा, उसे देखकर मुझे गर्व हो रहा है; पर मुझे आपसे यह भी कह देना चाहिए कि मुझे अपने-आप बोलती हुई तस्वीर नहीं दिखाई दी। एक कलाकृति को समझने के लिए किसी कलाकार की मुझे क्यों जरूरत पड़नी चाहिए। खुद तस्वीर ही मुझसे क्यों न अपनी कहानी कहे। अपना मतलब मैं आपसे और भी क्यों न साफ कर दूँ। मैंने पोप के कलाभवन में क्रूसारोहण करते हुए हजरत ईसा की एक मूर्ति

देखी थी। इतनी सुन्दर चीज थी वह कि मैं तो मन्त्रमुग्ध की तरह देखता ही रह गया। उसे देखे पाँच साल हो गये, पर आज भी वह मेरी आँखों के सामने खड़ी है। उसका सौंदर्य समझाने के लिए वहाँ कोई नहीं था। यहाँ की वेल्स—मैसूर में पुराने मन्दिरों में दीवारगीर पर एक तस्वीर देखी, जो खुद ही मुझसे बोलती थी और जिसे समझाने के लिए किसीकी जरूरत नहीं थी। वह तो सिर्फ एक अधनंगी औरत की तस्वीर थी, जो कामदेव के बाणों से अपने-आपको बचाने का प्रयत्न कर रही थी और आखिर उसने उस पर विजय पा ही तो ली। जो बिच्छू के रूप में उसके पैरों में पड़ा हुआ था, उस जहरीले बिच्छू के जहर से उसे असह्य पीड़ा हो रही थी। उसे मैं उसके चेहरे पर साफ देख रहा था। कम-से-कम उस बिच्छू और स्त्री के चित्र का मैंने तो यही अर्थ लगाया।"

झोपड़ी में काव्य

सेवाग्राम के रास्ते में बनी मीराबहन की झोपड़ी को देखकर बापू ने कहा था : "मैं तो उसे काव्य कहूँगा! वह दरअसल और सच्चे अर्थ में उसकी झोपड़ी है। यह झोपड़ी मेरी नहीं, बल्कि मेरे लिए बनायी गयी है। मगर मीराबहन की झोपड़ी निश्चय ही उनकी है। नकशा भी उन्हीं-का बनाया हुआ और उसे खड़ा भी उन्हींने किया है। उसकी एक-एक चीज में ग्राम्य मनोवृत्ति की सुन्दर झलक देखकर मेरी आँखों में आनन्दाश्रु भर आये।"

विचारक हो नहीं, आचार्य

उन्होंने कभी लिखने के लिए नहीं लिखा। लेकिन जो कुछ लिखा, वह कोटि-कोटि जनता के जीवन में उतारने की वस्तु बन गया। अपने लिखने के सम्बन्ध में उनका कहना था : "मैंने जा कुछ लिखा है, वह मैंने जो कुछ किया है, उसका वर्णन है। मैंने जो कुछ किया है, वही सत्य और अहिंसा की सबसे बड़ी टीका है। उसमें जिनको विश्वास है, वे उन सिद्धान्तों का प्रचार केवल तदनुसार आचरण करके ही कर सकते हैं।"

वे केवल मौलिक विचारक ही नहीं, अपने प्रत्येक विचार को कार्यरूप में परिणत करनेवाले आचार्य भी थे। उनके प्रत्येक कार्य के पीछे स्वस्थ विचारों की एक पृष्ठभूमि होती थी। इतिहास-प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो'-आन्दोलन से पूर्व वे उसकी रूपरेखा और आवश्यकता पर पर्याप्त प्रकाश डाल चुके थे।

उन्होंने भिन्न-भिन्न अवसरों पर, भिन्न-भिन्न विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये थे, लेकिन विचारों में कहीं विरोधाभास नहीं आ पाया। कारण, उनका उद्गम बुद्धि से नहीं, हृदय से था।

एक बार जब वे जेल में सत्याग्रह-आश्रम का इतिहास लिख रहे थे, तब बातचीत के सिलसिले में एक अंग्रेज अफसर ने पूछा : "इसके लिए तो आपको कागजात देखने पड़े होंगे।" इस पर उन्होंने कहा था : "नहीं, मैंने तो 'आत्मकथा' और 'सत्याग्रह का इतिहास' भी कागजात के बिना ही लिखा था। और बाद में कागजात से मिलान करके देखने से उसमें कोई भूल नहीं जान पड़ी।"

'पतंग-नृत्य'

वे कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक बात कहने और सरल सीधी भाषा में हृदयग्राही विचार व्यक्त करने की कला जानते थे। एक बार 'डेथ-डान्स' शीर्षक अपने लेख का हिन्दी-अनुवाद करते समय उन्होंने अपने साथियों से उसके लिए शब्द चाहा। साथियों ने कुछ शब्द सुझाये, लेकिन उन्हें पसन्द न आये। अन्त में स्वयं उन्होंने उसका अनुवाद करते हुए कहा था : "लो, मुझे ही सूझ गया। उसका अर्थ होगा 'पतंग-नृत्य'।" यदि और कोई होता, तो उसके लिए 'मृत्यु-नृत्य' शब्द स्वीकार कर लेता; लेकिन बापू तो जीवन के कलाकार ठहरे न! 'पतंग-नृत्य' कहते ही दिये की लौ पर नाचनेवाले पतंगों के मृत्यु-नृत्य का जैसा सजीव चित्र आँखों में खिंच आता है, वैसा और किसी शब्द से नहीं।

काव्य के सम्बन्ध में एक बार बापू ने बहुत ही सुन्दर बात कही थी। कहा था :

"जब समाज रूखे न्याय से नहीं चलता, तब उसे काव्य की जरूरत रहती है।"

" 'कृपा' शब्द काव्य की भाषा है।"

" 'भक्ति' ही काव्य है।"

"पानी दो हिस्से हाइड्रोजन और एक हिस्सा आक्सीजन से बना हुआ है, यह विज्ञान की बात हुई, लेकिन पानी ईश्वर की देन है, यह कहना काव्य की बात हो गयी।"

सौन्दर्य के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था : "सौन्दर्य की तारीफ होनी ही चाहिए, लेकिन वह हो मूक, अच्छी और **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः ।'** यह कहा जा सकता है कि जिसे आकाश का सौन्दर्य हर्ष नहीं पहुँचा सकता, उसे कोई चीज अच्छी नहीं लगेगी। मगर जो खुशी से पागल होकर नक्षत्र-मंडल तक पहुँचने की सीढ़ी तैयार करने का प्रयत्न करे, वह बेभान है।"

बापू को आकाश-दर्शन का भी अद्भुत शौक था। वे कहा करते थे :

"मेरे लिए आकाश-दर्शन ईश्वर-दर्शन का द्वार बन गया है। यहाँ एक बार एकाएक ऐसा मालूम हुआ कि आकाश-दर्शन तो एक बड़ा सत्संग है, तारे भी हमारे साथ चुपचाप बात करते रहते हैं।"

क्रान्तिकारी युग-निर्माता : २ :

गांधीजी के विषय में क्या कहा जाय, जो हमारे और हमारे समग्र राष्ट्र के जीवन में ओतप्रोत हो चुके हैं। पत्थर पर खींची गयी लकीर की तरह वे जो कुछ भी बोलते थे, साहित्य उनके पीछे अपने-आप बनता चलता था। वे निर्जीव कला के उपासक नहीं थे, किन्तु मनुष्य के शरीर में चार बूँदें खून की बढ़ाकर उसके चेहरे पर सुर्खी ला देनेवाले जीवन के कलाकार थे। रस्किन की भाँति जो सौन्दर्योपासक के नाम से प्रसिद्ध नहीं थे, किन्तु जो आकाश से गिरनेवाले पानी, गाँव के एक कोने में बसी हुई

झोपड़ी और खेतों में हल चलाते हुए या करघे पर कपड़ा बुनते हुए आदमी में वास्तविक सौन्दर्य का दर्शन करते थे। उनका जीवन स्वयं काव्य था। दर्शन उनके शब्दों से झरता था और धर्म उनकी वाणी से समृद्ध होता था।

संघर्ष-काल में उनका नेतृत्व तरुणाई के लिए हँसते-हँसते मौत से खेलने का त्योहार बन जाता था और शांतिकाल में उनके प्रवचन सुनने के लिए मंदिर, मस्जिद और गिरजे से दल-के दल बिना किसी भेदभाव के प्रार्थना-स्थल की ओर घिर आते थे। उनकी एक आँख में सम्राट् का सिंहासन डोलने लगता और दूसरी आँख में राह चलती सड़क का आदमी जी जाने का वरदान पाता था। वे अपने एक हाथ से साम्राज्यों को मिटाते चलते और दूसरे हाथ से स्वराज्य का निर्माण करते थे।

जो स्वयं धर्म-प्रवर्तक नहीं थे, किन्तु संसार के सब धर्मों के अनुयायी जिनमें अवतार या पैगम्बर के दर्शन करते थे और जो अपने-आपको राजनैतिक नेता कहे जाने से इनकार करते थे, किन्तु जिन्होंने ४५ करोड़ के देश को अहिंसात्मक साधनों से आजादी दिलायी, यह स्वयंसिद्ध है और समस्त दुनिया एकमत से ऐसा कहती है।

आज गांधी से भिन्न राष्ट्र की कल्पना नहीं। 'जैसा गांधी, वैसा भारत' यह हमारे राष्ट्र का स्वरूप बन चुका है। गांधी ने हमें जो भी दिया है, वह कभी भुलाने की वस्तु नहीं। वे भारतीय जन-मन में छा गये हैं, समा गये हैं। एक क्रांतिकारी युग-निर्माता की तरह उन्होंने भारतीय जीवन में प्रवेश किया। उन्होंने राष्ट्र में चहुँमुखी क्रांति की। वर्षों से विदेशी गुलामी में जकड़े देश को आजाद करने के लिए अहिंसात्मक आन्दोलन के साथ-ही-साथ उन्होंने रचनात्मक कार्य के जरिये राष्ट्र-निर्माण का कार्य भी अपने हाथ में लिया।

खादी और चरखे के जरिये उन्होंने हमारी बेकारी की समस्या हल करते हुए दरिद्रनारायण के साथ अपने-आपको घुला-मिला देने और ऊँचा उठाने का रास्ता दिखाया। छुआछूत को दूर करने के रूप में उन्होंने हिन्दू-धर्म के सबसे बड़े कलंक को मिटाकर मनुष्यमात्र को प्यार

करने और ऊँच-नीच का भेद-भाव भूलकर सबमें ईश्वर का दर्शन करना सिखाया। छोटे-छोटे उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देकर उन्होंने देश को पूँजीवाद के चंगुल से बचाया और ग्राम-स्वावलंबन और ग्राम-स्वराज्य का निर्माण किया। साम्प्रदायिक एकता की बात समझाकर उन्होंने हिन्दुओं को अच्छे हिन्दू, मुसलमानों को अच्छे मुसलमान और ईसाइयों को अच्छे ईसाई बनाकर विश्व-बन्धुत्व और विश्व की एकता का मंत्र सिखाया। अपने विविध रचनात्मक कार्यक्रमों के जरिये उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक दृष्टि से राष्ट्र का चहुँमुखी निर्माण किया है। यही स्थिति उनके द्वारा संचालित राजनैतिक आन्दोलनों की भी रही है। इतिहास में वे पहले आदमी थे, जिन्होंने धर्म और राजनीति का समन्वय साधा था और जो एक साथ ही योद्धा और सन्त थे। युद्ध में अहिंसा को स्थान दिलाकर उन्होंने हमें एक नये धर्म-युद्ध की पद्धति सिखायी है, जिसमें हार के लिए कहीं स्थान नहीं है। उसका अपना एक शस्त्र है, एक क्रम है। उन दिनों जब अंग्रेजी राज्य के खिलाफ बात करना तक गुनाह था, उन्होंने हमें अन्याय के खिलाफ 'असहयोग' करना सिखाया। उन्होंने हमें बताया कि सत्य और न्याय के साथ सहयोग करना जितना बड़ा धर्म है। असत्य और अन्याय के साथ असहयोग करना भी उतना ही बड़ा धर्म है। सत्याग्रह के जरिये उन्होंने हमें सत्य के लिए आग्रह करने की शिक्षा दी और सविनय कानून-भंग करने के जरिये उन्होंने हमें असत्य का विनय के साथ प्रतिकार करने की दीक्षा दी। और इस तरह सत्य का दृढ़ता से पालन और असत्य का नम्रता से प्रतिकार करने के मंत्र को लेकर सन् '४२ में उन्होंने राष्ट्र को जो क्रांतिकारी नेतृत्व दिया, वह संसार की आज तक की क्रांतियों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। युद्ध के दिनों में अहिंसात्मक साधनों से ४५ करोड़ के देश को आजादी दिलाने का विश्व-इतिहास में यह पहला उदाहरण है, पहली मिसाल है।

जिन्होंने हमें आजादी दिलायी, जिन्होंने हमारे राष्ट्र का निर्माण किया

और जो हमारे मनःप्राण में समा गये हैं, उन्हें हम कैसे भूल सकते हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हम गांधी के युग में जनमे। एक बार एक अंग्रेज महिला ने अपने हृदय के समस्त भावों को व्यक्त करते हुए लिखा था : "इस धरती पर धीरे से पाँव रखो, गांधी का जन्म हो चुका है।" और एक दूसरे विदेशी कलाकार ने लिखा : "किसीके जीवन-काल में गांधी रोज-रोज पैदा नहीं हुआ करता। उसके युग में जन्म लेना ही महान् सौभाग्य है।"

मनुष्य का यह इतिहास रहा है कि उसने सदा देवता को मारकर पत्थर की पूजा की है। ईसा को सूली पर लटकाया गया, सुकरात को जहर पिलाया गया, राम को जंगलों में ठोकरें खानी पड़ीं, कृष्ण व्याध के शिकार हुए, मुहम्मद साहब को पत्थरों से मारा गया, बुद्ध को दर-दर भटकना पड़ा और संसार के सबसे बड़े अवतार गांधी की गोली से हत्या की गयी।

गांधीजी आज हमारे बीच नहीं रहे। लेकिन उनके विचार, कार्य और संदेश आज भी हमारे साथ हैं। गांधी नामक व्यक्ति नहीं, वरन् अव्यक्त आत्मशक्ति, जो दूर-सुदूर तक मानव-जीवन को संचालित किये थी, उसे हमसे कौन छीन सकता है? उनके विचारों को अपने जीवन में उतारकर हम उनके प्रति ईमानदार साबित हो सकते हैं। उनका जीवन युग-युगान्त तक मानव-जीवन का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा। ●

मानवता के मुक्ति-दूत : ३ :

मानवता के इतिहास में वह दिन चिरस्मरणीय रहेगा, जिस दिन गांधीजी ने हिन्दू-धर्म पर से अस्पृश्यता के कलंक को मिटाने के लिए, २१ दिन के उपवास के जरिये मौत का मुकाबला किया था।

[illegible]

हुए उन्होंने कहा था : "महाभीषण पाप का नाश करने के लिए बड़े पुण्य का पुंज चाहिए। जैसे हजारों की हत्या होती है और 'ओहो' कहते हुए हम जाग उठते हैं, वैसे ही हजारों मरने को तैयार हो जायँ, तो चमत्कारी असर हो। उपवास की छाया के नीचे तो पाप के बड़े-बड़े पत्थर उखड़ जायँगे और लोगों की आँखों पर पड़ा पर्दा उठ जायगा।"

गांधीजी के उपवास से चिंतित होकर जब एक हरिजन ने उनसे कहा कि "आप जीते हैं तब तक हमारा रक्षक है, आप न जियेंगे तो हमारा सब कुछ चला गया समझिये।"

इस पर गांधीजी ने कहा था : "तुम्हारा और मेरा रक्षक राम बैठा है। ....फिर भी कहता हूँ कि यदि शरीर नष्ट हो जाय, तो क्या हुआ? दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द और रामतीर्थ इन सबके चोले नष्ट हो गये, तो क्या उनके काम बन्द हो गये? मैं तो प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि वे जितना काम आज कर रहे हैं, उतना शायद जीते-जी नहीं करते थे। इसका कारण यह है कि सत्य अमर है और असत्य प्रतिक्षण नाशवान् है। शरीर असत्य है। असत्यरूपी उनके जो शरीर थे, उनका नाश हो गया; परन्तु सत्यरूपी उनके शरीरों का, उनकी पवित्रता, उनके त्याग और उनके प्रेरित किये हुए जीवन-मंत्रों का नाश नहीं हुआ। वे आज हमें जिला रहे हैं। उनके शरीररूपी असत्य के वृक्ष की जड़ें सूख गयी हैं, लेकिन उनके सत्य वृक्ष के फल आज भी हम चख रहे हैं और चखते ही रहेंगे।"

अस्पृश्यता-निवारण के कार्य की आलोचना करनेवाले धर्मान्ध हिन्दुओं से उन्होंने कहा : "मुझे तो पोथियों में पड़े हुए और आज लुप्तप्राय हो रहे धर्म का आचरण करके दिखाना है।

"आज हिन्दुओं में हिन्दुत्व रहा ही नहीं; इसलिए मेरे ये उद्गार हँसी करने लायक होते हैं, पर मैं कहता हूँ, याद रखना, जो आज हँस रहे हैं, वे कल रोयेंगे। मैं मरूँगा इसलिए, या मैं मरूँगा तब रोयेंगे सो बात नहीं। लेकिन अपने पापों का विचार करके रोयेंगे, अपने पापों का

फल भोगेंगे तब रोयेंगे और वर्तमान अन्याय से रुष्ट हरिजनों को उल्टी मति सूझने पर जिनका ठौर-ठिकाना भी नहीं रहेगा, वे रोयेंगे।

"आज मुझे भले ही बेवकूफ और पाखंडी कहें, लेकिन सौ वर्ष बाद कोई ऐसा नहीं कहेगा।

"इस उपवास से इस बड़ी लड़ाई का एक नया युग शुरू होता है। इस उपवास से शुरू होनेवाला अग्निहोत्र अस्पृश्यता के भस्म हो जाने तक अखंड जलता रहेगा।

"यह उपवास तो गरीब हरिजनों के लिए है, स्त्रियों के लिए है, बच्चों के लिए है। सारी दुनिया को यह पाप मिटाने के लिए मैं जाग्रत करना चाहता हूँ।"

आज जैसे श्रद्धा से दूर बौद्धिक युग में वह क्षण आश्चर्यजनक चमत्कार का था, जब गांधीजी ने उपवास के लिए ईश्वरीय आदेश सुना था। उस अवस्था का वर्णन करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है :

"मुझे जो प्रेरणा हुई, वह यह थी कि जिस रात को यह प्रेरणा हुई, उस रात को बड़ा हृदय-मंथन रहा। चित्त व्याकुल था। मार्ग सूझता नहीं था। जिम्मेदारी का बोझ मुझे कुचले डालता था। इतने में मैंने एकाएक आवाज सुनी। मैंने देखा कि वह बहुत दूर से आती हुई मालूम होने पर भी बिलकुल नजदीक थी। यह अनुभव असाधारण था। यह आवाज भी ऐसी ही थी, जैसे हमें कोई मनुष्य कुछ कहता है। इच्छा न होने पर भी उसे सुने बिना चल ही नही सकता, यह मैं साफ देख सका। उस समय मेरी स्वप्नावस्था नहीं थी। मैं बिलकुल जाग्रत था। असल में रात की पहली नींद लेकर मैं उठा था। यह भी न समझ सका कि मैं कैसे उठ गया। आवाज सुनने के बाद हृदय की वेदना शांत हो गयी। मैंने २१ दिन का अनशन करने का निश्चय किया। मेरा भार एकदम हलका हो गया और हृदय उल्लासमय हो गया।

"सारी दुनिया मेरा कहना न माने और विरुद्ध राय दे, तो भी मैं

अपने इस विश्वास पर कायम रहूँगा कि मैंने भीतरी आवाज सुनी और मुझे ईश्वरी प्रेरणा हुई है।"

गांधीजी के इस उपवास को यदि दरिद्रनारायण से तन्मय होने की उपासना, आत्मशुद्धि का यज्ञ एवं ईश्वर-साक्षात्कार की साधना कहें, तो भी अत्युक्ति नहीं।

इस तरह गांधीजी ने जब अपने उपवास का निर्णय अपने साथियों के समक्ष रखा और कहा कि "इसमें बहस की गुञ्जाइश नहीं, इसलिए बहस न करना", तो सब स्तब्ध रह गये।

अन्त में उसीमें से अपना मार्ग खोजते हुए लौह-पुरुष सरदार पटेल ने कहा : "इनसे ज्यादा पवित्र कोई है ? यह किसे मालूम है कि ईश्वर को इन्हें रखना है या उठा लेना है, किन्तु इनके मन और आत्मा का प्रवाह जिस दिशा में बहता हो, हम तन-मन और वचन के मौन के साथ उसके अनुकूल बनें।" इन शब्दों में कितनी वेदना, आत्मीयता, अनुशासनप्रियता और दृढ़ता छिपी हुई है।

यदि कोई इसके बाद भी बहस करता, तो सरदार कहते : "इन्हें न सताओ। इन तिलों में बहुत तेल नहीं है; ज्यादा कुचलोगे तो तेल नहीं निकलेगा, बल्कि अंगारे झरेंगे।"

अपने हृदय के समस्त स्नेह और शक्ति को उँड़लते हुए श्री पं० जवाहरलालजी नेहरू का पत्र आया : "आपका पत्र मिला। जिस चीज को मैं समझता नहीं, उसमें मैं क्या कह सकता हूँ ? इस जगत् में भटका हुआ मैं अकेले आपको ही दीपस्तम्भ की तरह देखता हूँ और अँधेरे में रास्ता ढूँढ़ने के लिए हाथ-पैर मारता हूँ। पर ठेस लगने पर गिर पड़ता हूँ। कुछ भी हो, पर मेरा प्रेम कायम है और मैं आपका ही विचार करता हूँ।"

श्रीमती गोशीबहन ने लिखा : "तो आप ही हमारे लिए वधस्तम्भ पर चढ़ रहे हैं। मुझमें तो इतनी श्रद्धा है कि आप इस यज्ञ से पार उतरेंगे और सारे देश को एक सीढ़ी ऊँचा चढ़ा देंगे।"

एक पारसी सज्जन ने लिखा : "अगर आपका मरण हो जाय, तो करोड़ों जी जायेंगे। अगर आप सफल हुए, तो करोड़ों अपना पुनरुद्धार कर लेंगे।"

ऐसे समय में जब चारों ओर चिंता छा गयी थी, एक पत्रकार बन्धु ने बापू से पूछ ही तो लिया कि "इस बार आप बच जायँ, तो चमत्कार ही होगा।" इस पर गांधीजी ने तुरन्त कहा था : "अच्छा, तो मैं कहता हूँ कि चमत्कार का जमाना बीत नहीं गया।"

उस वचन में मधुर विनोद ही नहीं था, बल्कि करुणामय की लीला का दर्शन था।

उसके बाद का वर्णन करते हुए श्री महादेवभाई ने लिखा है : "२९ मई को दुनिया को विश्वास हो गया कि चमत्कार का जमाना अभी बीत नहीं गया है....सच्चे ईश्वर-भक्त के लिए घटनामात्र एक चमत्कार ही है।

"हार और जीत दोनों को जो अपनी मानता ही नहीं, जिसने ये दोनों ईश्वर को सौंप दी हैं, वही कह सकता है कि हार-जीत दोनों मेरे लिए अच्छी हैं। दोनों में मेरी जीत है। फिर भी हमारे जैसे प्राकृत जनों के लिए उनके जीने में ही जीत थी, उनके जीने में ही चमत्कार था और वे मौत के मुँह में से वापस आ जायँ, इसीमें हिन्दुस्तान के लिए सोने के सूर्य का उदय था। हजारों और लाखों ने यह प्रार्थना की थी और उस प्रार्थना को सुनकर लीलामय भगवान् ने २९ तारीख के दिन सोने का सूर्य उगाना मंजूर किया।

"भारत का जीवन, भारत के प्राण सूख जानेवाले हैं, ऐसा डर सबको हो गया था और इक्कीस दिन, सबेरे-शाम श्वासोच्छ्वास में मानो यही प्रार्थना थी, तब भगवान् करुणा बरसाते, गीत-सुधा सरसाते हुए आये।"

यों उन्होंने मृत्यु में से एक नवीन जीवन प्राप्त किया और सारे संसार में आनन्द की एक लहर छा गयी।

कुछ मित्रों ने लिखा कि "गांधीजी का पुनर्जन्म हुआ है।" कनाडा से एक बहन ने लिखा : "जगत् को पवित्रता के मार्ग पर अग्रसर करने का प्रयत्न करनेवाले को अनेक नमस्कार।" विलायत से एक मध्यमवर्गीय शिक्षित जन ने लिखा : "आपके जीवन के कारण मुझे, अपने बच्चों को ईसा और बुद्ध जैसों का जीवन समझाना बहुत आसान हो गया है।"

अमेरिका से आये एक पत्र में लिखा था कि "आपकी प्रार्थना में मैं अपनी प्रार्थना भी मिलाऊँगा। और कुछ नहीं तो आपकी 'जीवन-डोरी' बढ़ाने के लिए उतनी एक रेशम की डोर तो बढ़ेगी।"

सुदूर एंटवर्प के गाँव से एक गरीब क्लर्क ने लिखा था कि "दूर होने पर भी आपका प्रकाश मेरे मार्ग को प्रकाशित कर रहा है।"

अंत में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में हम भी कहना चाहेंगे :

"जय हो उस तपस्वी की, जो इस समय बैठे हैं—मृत्यु को समीप रखकर, भगवान् को अंतर में स्थापित करके और समस्त हृदय के प्रेम का दीपक जलाकर, आप उनकी जयध्वनि पुकारिये। अपना कंठ-स्वर पहुँचाइये उनके आसन के पास।"

●

सर्वहारा के साथी : ४ :

महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का एक गीत है, जिसमें उन्होंने सर्वहारा के बीच ही अपने प्रभु के होने की ओर इंगित किया है। उस गीत का संक्षिप्त भावार्थ है :

"अज्ञान के अन्धकार में अपने हृदय को छिपाकर किस देवता की पूजा में निमग्न है। तू आँखें मींचकर देख; देवता इस घर में नहीं है।

"जहाँ कृषक हल चलाकर अन्न-बीज धरती में बो रहे हैं; श्रमी जहाँ पत्थर तोड़कर पथ बना रहे हैं; धूलि-धूसरित जिनके कर और तन हैं,—

"स्वच्छ वसन छोड़कर उन्हींके समान तू भी धूल में चल!

"प्रभु अपनी रचना में बँधे सबके साथ हैं।

"जहाँ अधम-से-अधम और दीन-से-दीन रहते हैं; उसी भूमि पर तुम्हारे चरण निवास करते हैं। तुम तो सबसे पीछे, सबसे नीचे सर्वहारा जनों के बीच में हो।"

अनेक लम्बे-लम्बे वर्षों के बाद भी लगता है, जैसे बापू का समग्र जीवन उक्त गीत के शब्द-शब्द में बोल रहा है।

याद कीजिये सन् '४३ के उस बंगाल-व्यापी महाभयानक दुष्काल को, जिसने हमारे शस्य-श्यामला, सुन्दर और कलाप्रिय बंगाल को नर-कंकालों की भूमि बना दिया था! समस्त कार्यकर्ताओं के साथ बापू भी जेल के सींखचों में बंद थे। वहाँ जो कुछ हुआ, उसे सुनकर उनकी आत्मा काँप उठी! जेल से छूटते ही वे अपने-आपको बंगाल जाने से न रोक सके। देश के क्षुब्ध वातावरण और आमरण उपवास के फलस्वरूप उत्पन्न शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद बापू पत्थर को पिघला देनेवाले हृदय को लेकर भूखे नर-कंकालों के बीच गये। उस स्थान पर गये, जहाँ चन्द रोटी के टुकड़ों पर मानव की इज्जत, आबरू और जिंदगी की बाजी लगी हुई थी। हमने देखा, दूसरों के प्रति फूल से भी कोमल हृदयवाले बापू अपने इरादों में कितने कठोर—कितने सख्त थे! वहाँ उन्होंने जो कुछ भी कहा, वह राजनीति की दुनिया में—मनुष्य के इतिहास में—अमर रहेगा। वे बोले : "मैं यहाँ बंगाल की राजनीति या आगामी चुनाव में भाग लेने के लिए नहीं आया हूँ। मैं तो यहाँ अकाल से पीड़ित और अकाल से काल-कवलित लोगों से अपनी समवेदना प्रकट करने आया हूँ। उनके कष्ट-निवारण में हाथ बँटाने आया हूँ और उन्हें धीरज देने आया हूँ।"

दिन बीतने लगे। और चन्द वर्ष भी न बीत पाये थे कि बंगाल पुनः अमानुषिक, बर्बरतापूर्ण अत्याचारों से कराह उठा। लगा, जैसे किसीने लहलहाती फसल में आग लगा दी हो। धर्म, संस्कृति, राजनीति और मानवता सब कुछ जल उठे। निरीह मानवता कराह उठी। उसकी वेदना से काँप उठा सारा राष्ट्र। किसीको कुछ भी न सूझ पड़ा कि अब क्या

हो ? किसीने प्रतिहिंसा की बात कही, तो किसीने दमन की। किसीने शांति का पाठ शुरू किया और कोई मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ। किसीकी आँखें फौज पर जमीं और किसीने राष्ट्रीय सरकार की आलोचना करने में गौरव समझा।

लेकिन अपने जीवन के ४० वर्ष अहिंसा की साधना में लगा देनेवाला वह व्यक्ति इस खतरनाक समय में भी उसीके हवाले अपने को सौंप सबको छोड़ एक दिन चुपके से बंगाल की ओर चल दिया। एक लकुटी और खादी का अँगोछा ओढ़ वह भारत राष्ट्र का कर्णधार पुनः सबसे अधिक शोषित, पीड़ित और पद-दलित वर्ग के साथ हो लिया। उसने कहा : "मैं किसीका इन्साफ करने या किसीके खिलाफ या हक में फैसला देने के लिए बंगाल नहीं जा रहा हूँ, मैं तो वहाँ लोगों के एक सेवक की हैसियत से जा रहा हूँ। मैं वहाँ के हिन्दू, मुसलमान दोनों से मिलूँगा। ...... अपनी सत्रह साल की उमर से ही मैंने यह सबक सीखा है कि सभी इन्सान, फिर वे किसी भी कौम, रंग या मुल्क में क्यों न हों, मेरे अपने सगे हैं, रिश्तेदार हैं। अगर हम भगवान् के सेवक हैं, तो हमें चाहिए कि उसकी सारी सृष्टि या खिलकत के भी सेवक बनें।"

कैसा अद्भुत क्षण था वह, जब भारतीय राजनैतिक जाग्रति का जन्मदाता उसके सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काल में, सबसे बिदा ले जनता-जनार्दन की सेवा में अपने-आपको खपा देता है। लेकिन उसके लिए यह कोई नयी बात नहीं, नया प्रयोग नहीं; जो जनता की अधिक-से-अधिक सेवा करने के लिए अपने ही रक्त से प्राण-प्रतिष्ठित जनतन्त्रात्मक संस्था की सदस्यता को भी त्याग सकता है।

राष्ट्रीय जागरण में अभूतपूर्व सफलता और प्रगति के बावजूद जिसकी आत्मा अधिक व्यापक क्षेत्र की—सात लाख गाँवों की—जाग्रति और सेवा के लिए, सेवाग्राम जाने को बेचैन हो उठती है, उसे अपने निश्चय से कौन रोक सकता है ? और उसकी सफलता में कौन-सी शक्ति सहायक न हो उठेगी ?

सजीव मानव को छोड़ शून्य एकान्त में अपने प्रभु को खोजनेवाले अध्यात्मवादी और अपने जीवन से अछूते काल्पनिक शब्दजाल में 'महामानवता' के ताने-बाने बुननेवाले कलाकार तथा शोषित और पीड़ित वर्ग के नाम पर बिना उनकी रंचमात्र सेवा किये श्वास-प्रतिश्वास के साथ वर्ग-संघर्ष का नारा लगानेवाले बुद्धिजीवी राजनीतिज्ञ जरा देखें कि बापू का समग्र जीवन सदा से उस वर्ग के साथ रहा है, जो सबसे अधिक शोषित, पीड़ित और पददलित रहा है। वे सदा से उस सर्वहारा के साथ रहे हैं, जो शांति का जनक और क्रान्ति का अधिष्ठाता माना गया है और जिसके उत्कर्ष में ही अखिल राष्ट्र का उत्कर्ष सन्निहित है। बापू अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी उसकी सेवा से कभी नहीं चूके।

याद कीजिये, यरवदा-जेल में किये गये उस आमरण अनशन को, जो समाज के उस वर्ग को समानाधिकार दिलाने के लिए किया गया था, जो युगों से सबसे अधिक पददलित रहा। अपने-आपको 'हरिजन' बनाकर—इतना झुकाकर कि जो सबसे अधिक झुके हुए की भी अत्यंत नम्रता से सेवा कर सके—उन्होंने उसकी सेवा की और उसे आज इस स्थिति में लाकर रख दिया कि जिसकी सेवा करने में, जिसको संगी-साथी और सहयोगी बनाकर चलने में बड़े-से-बड़ा व्यक्ति भी अपना गौरव समझता है!

आर्थिक दृष्टि से समाज के जीवन में उन्होंने इतनी बड़ी क्रान्ति कर दी कि एक मजदूर के हाथों में स्थित चरखे से निकलनेवाला सूत का कच्चा तार, बीसवीं शताब्दी जैसे वैज्ञानिक युग में बड़ी-से-बड़ी मिलों के समक्ष प्रतिस्पर्धा का कारण बन गया। चरखे से उन्होंने न सिर्फ मानव-जीवन की अनिवार्य शर्त कपड़े के सवाल को ही हल किया, वरन् सदियों से आर्थिक गुलाम मानव को स्वतंत्र, स्वावलम्बी जीवन का मार्ग दिखाया और हर तरह की गुलामी से मुक्त होने का महामंत्र सिखाया।

एक बार आचार्य कृपालानी ने कहा था: "मार्क्स तो सेवाग्राम में रहते हैं। यदि आप वास्तविक क्रियात्मक-प्रजातन्त्र देखना चाहते

हैं, तो आपको सेवाग्राम जाना चाहिए, जहाँ लोग बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक बात में पूर्ण समानता का आनन्द उठा रहे हैं।" जिन्होंने एक बार भी सेवाग्राम की यात्रा की है, वहाँ की राष्ट्र-निर्माणकारी विधायक संस्थाओं का निरीक्षण किया है और सेवाग्राम के एकान्त कोने में, व्यक्ति-मानव के जरिये विश्व-मानव की सेवा-उपासना में तल्लीन, उस सेनानी संत के दर्शन किये हैं, चाहे वे किसी भी देश, किसी भी जाति या किसी भी विचार के क्यों न हों, इस बात से इनकार नहीं कर सकते।

इस तरह एक ओर जहाँ मेरी दृष्टि युग-पुरुष बापू की ओर एकटक निहारने लगती है, वहीं दूसरी ओर मेरे कानों में अस्पष्ट-सा जैसे कोई गुरुदेव का गीत गुनगुना जाता है :

"अज्ञान के अंधकार में अपने हृदय को छिपाकर तू किस देवता की पूजा में निमग्न है········वे तो वहाँ हैं, जहाँ अधम-से-अधम और दीन से-दीन रहते हैं। सबके पीछे, सबसे नीचे सर्वहारा जन के बीच ही उनका निवास है।"

बापू और गुरुदेव : ५ :

संसार का ऐसा कोई देश नहीं है, जहाँ गांधीजी और रवीन्द्रनाथ का नाम न पहुँचा हो। दुनिया के बड़े-से-बड़े राष्ट्रों में भारत 'गांधी और रवीन्द्र के देश' के नाम से जाना जाता है। एक ओर यदि रवीन्द्रनाथ विश्व में 'शांति के विजेता' थे, तो दूसरी ओर गांधीजी समस्त संसार में 'शान्ति-दूत' के नाम से प्रसिद्ध रहे हैं। ऐसे समय में जब दुनिया मानवता को भूलकर जड़ पाश्चात्य सभ्यता की ओर बेतहाशा दौड़ी जा रही थी, रवीन्द्रनाथ ने मनुष्य-मनुष्य को प्यार करने का सांस्कृतिक सन्देश सुनाया और जब दुनिया के बड़े-बड़े राज्य 'एटम बम' की महाभयानक लड़ाई में व्यस्त थे, तब गांधीजी ने 'सत्य, शान्ति और अहिंसा' का अभूतपूर्व मार्ग दिखाया।

गांधीजी और रवीन्द्रनाथ विश्व की दो महान् विभूतियाँ हैं। दोनों ने संसार के विभिन्न देशों का दौरा किया और युगों से शोषित और पीड़ित मानवता को ऊँचा उठाने में योगदान दिया। मानवता के संदेश-दाता के रूप में दोनों एक साथ और एक समान सर्वत्र अमर रहेंगे।

रोमांरोलां की श्रद्धा

एक बार गांधीजी स्विट्जरलैंड में विश्व के महान् साहित्यकार रोमां-रोलां के घर ठहरे थे। संयोगवशात् वे उसी कमरे में ठहराये गये, जो रोलां का निजी कमरा था। श्री महादेवभाई ने वहाँ का वर्णन करते हुए लिखा है : "वह छोटा-सा कमरा चारों ओर पुस्तकों से भरा था। उसकी दीवारों का जो भाग पुस्तकों की आलमारियों से बचा हुआ था, वहाँ रोलां को जिन लोगों के प्रति श्रद्धा है, ऐसे व्यक्तियों के सिरों की शिल्प-कृतियाँ रखी हुई थीं। आप जानते हैं वे व्यक्ति कौन हैं? जिनके प्रति इस महर्षि को अगाध श्रद्धा थी, उनके नाम ये हैं : गेटे, बिथोवेन, टॉल्स्टॉय, गोर्की, आइन्स्टाइन और भारत के हमारे प्यारे महान् पुरुष गांधीजी और रवीन्द्रनाथ।"

ठीक यही बात रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में भी है। रविबाबू जब चीन गये, तो चीनी जनता की ओर से उन्हें जो उपाधि दी गयी, वह बहुत ही सुन्दर है। उसमें उन्हें 'कड़ककर उदित होनेवाला सूर्य' कहा गया है।

एक बार अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए आपने कहा था : "आज शक्ति के साथ शक्ति का युद्ध चल रहा है। यह पशु के साथ पशु का युद्ध है, मनुष्य के साथ मनुष्य का नहीं। मनुष्य के प्रति विश्वास खो देना पाप है। अतः उस विश्वास की मैं अन्तिम समय तक रक्षा करूँगा।"

गांधीजी और रविबाबू में स्नेह-सम्बन्ध

गांधीजी और रवीन्द्रनाथ में अटूट स्नेह-सम्बन्ध था। एक बार की बात है, गांधीजी अस्वस्थ होने की वजह से कलकत्ता में ठहरकर अपना इलाज करा रहे थे। उन्हीं दिनों गुरुदेव भी लम्बी बीमारी से उठे थे। बहुत चाहने पर भी महात्माजी अस्वस्थ होने की वजह से उन्हें देखने

शान्तिनिकेतन न जा सके। किन्तु ज्यों ही गुरुदेव ने सुना कि महात्माजी की तबीयत खराब है, तो वे उनको देखने के लिए दौड़ आये, यह जानते हुए भी कि खुद उनका स्वास्थ्य इतना दुर्बल है कि वे सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकेंगे। अतएव उन्होंने नीचे से ही उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछताछ की और कहा कि मुझे यह जानकर खुशी है कि उनका स्वास्थ्य उतना खराब नहीं है। तत्पश्चात् बिना देखे ही उन्होंने वापस जाना चाहा, पर जब उनसे कहा गया कि उन्हें देखकर गांधीजी को बहुत प्रसन्नता होगी, तो उन्होंने कहा : "अच्छी बात है, मुझे आरामकुर्सी पर बिठाकर ऊपर ले चलो।" जब तक प्रार्थना होती रही, वे बैठे रहे, लेकिन गांधीजी से उन्होंने कोई बात नहीं की, ईश्वर से उनके स्वास्थ्य-लाभ के लिए प्रार्थना करके तथा आशीर्वाद देकर चले गये।

बापू और गुरुदेव के स्नेह का निम्नलिखित घटना से भी पता चलता है। दोनों महापुरुष एक-दूसरे से दूर रहकर भी परस्पर बहुत नजदीक थे और इनमें आत्मा का बड़ा अटूट सम्बन्ध था। बात सन् '३६ की है। गांधीजी दिल्ली में थे और गुरुदेव भी अपने आश्रमवासियों के एक दल के साथ अपने 'चाण्डालिका' नामक नाटक का अभिनय करने दिल्ली आये हुए थे। वे वृद्ध थे और थके हुए दिखाई दे रहे थे। गांधीजी के लिए यह असह्य हो गया कि गुरुदेव को अपनी संस्था के लिए धन-संग्रह के निमित्त रंगमंच पर उतरना पड़े। अतएव उन्होंने श्री घनश्यामदास से इसकी चर्चा की। फलस्वरूप फौरन् एक चेक के साथ निम्नलिखित पत्र उनकी सेवा में भेजा गया : "पूज्य गुरुदेव, इसके साथ साठ हजार का एक चेक जा रहा है। हमें मालूम हुआ कि शान्तिनिकेतन के खर्च में इतनी कमी पड़ गयी है और उसकी पूर्ति के लिए आप स्थान-स्थान पर अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे हैं। जब हमने यह सुना तो हम शर्मिन्दा हुए। आप केवल भारतवर्ष के ही बड़े-से-बड़े कवि नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव-जाति के कवि हैं। आपके काव्य प्राचीन ऋषियों की ऋचाओं का स्मरण कराते हैं। आपने अपनी अद्वितीय प्रतिभा द्वारा हमारे देश का

गौरव बढ़ाया है और हम यह अनुभव करते हैं कि जिन्हें ईश्वर ने कृपा-पूर्वक धन दिया है, उनका कर्तव्य है कि वे आपको अपनी संस्था चलाने के लिए आवश्यक धन-संग्रह करने के बोझ से मुक्त कर दें। यह रकम इस दिशा में हमारा एक नम्र प्रयत्न है। आपके नम्र : देशबन्धु !"

जब यह पत्र लेकर स्वर्गीय महादेवभाई देसाई गुरुदेव के पास गये, तो उन्हें अपार हर्ष हुआ और उन्होंने अपनी यात्रा का कार्यक्रम रद्द कर दिया तथा गांधीजी को एक ही वाक्य का एक पत्र लिखा : "आपने मेरी इतनी मदद की और अपने जिस स्वधर्म से मैं विचलित हो गया था, उसका मुझे स्मरण कराया। इस सम्बन्ध में अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मुझे शब्द नहीं मिल रहे हैं।"

दोनों महामानवों का मिलन

गांधी-रवीन्द्र स्नेह के सबसे मीठे संस्मरण वे हैं, जब गांधीजी ने शान्तिनिकेतन की यात्रा की थी और ये दोनों महामानव मिले थे। यह मुलाकात दो समुद्रों के संगम की तरह अवर्णनीय है। अपनी इस यात्रा के सम्बन्ध में स्वयं गांधीजी ने लिखा है : "मैंने अक्सर एक कुशल भिक्षुक होने का दावा किया है, लेकिन आज गुरुदेव का मुझे जो आशीर्वाद मिला है, उससे बढ़कर दान मेरी झोली में कभी किसीने नहीं डाला।"

गुरुदेव के सम्बन्ध में गांधीजी ने एक बार लिखा : "वे एक ऋषि थे। हमारे लिए वे गीतांजलि छोड़ गये हैं, जिसने उन्हें सारी दुनिया में मशहूर कर दिया है। उन्होंने सिर्फ कवि के नाते ही नहीं, वरन् एक ऋषि की हैसियत से भी लिखा है, लेकिन सिर्फ लिखना ही उनकी अकेली विशेषता नहीं थी। वे एक कलाकार थे, नृत्यकार थे और गायक थे। उत्तम-से-उत्तम कला में जो मिठास और पवित्रता होनी चाहिए, वह सब उनमें और उनकी चीजों में थी। नयी-नयी चीजें पैदा करने की उनकी ताकत ने हमें शान्तिनिकेतन, श्रीनिकेतन और विश्व-भारती जैसी संस्थाएँ दी हैं। अपनी इन संस्थाओं में वे भावरूप से विराजमान हैं।"

एक जगह वे लिखते हैं : "गुरुदेव महान् विहंग की तरह थे, जिनके लम्बे और वेगवान् पंख थे और जिनके विस्तार में वे अनेक लोगों को संरक्षण और सहारा देते थे । गुरुदेव की कविताओं और गीतों ने उनकी बहुत-सी प्रवृत्तियों के साथ देश के मान-दण्ड और सम्मान को विश्व के लोगों की आँखों में बहुत अधिक बढ़ा दिया ।"

बापू और सरदार : ६ :

गांधीजी और सरदार वल्लभभाई पटेल के बीच अत्यन्त ही स्नेहिल संबंध थे । जिस तरह नदी के अंदर एक अंतर्धारा होती है, जो नदी के प्रवाह को सूखने नहीं देती, उसी तरह इन दोनों महापुरुषों के बीच स्नेह की एक ऐसी निर्मल धारा प्रवहमान थी, जिसने उनकी जीवित रसधारा को सूखने नहीं दिया । अपने व्यस्त राजनैतिक जीवन के बावजूद बापू और सरदार के बीच लंबा पत्र-व्यवहार चलता रहता था । मणिबहन पटेल द्वारा संपादित सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम लिखित गांधीजी के पत्रों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है, इससे भी इन संत और सेनानी की घनिष्ठ मैत्री एवं विनोदी स्वभाव का पता चलता है ।

गांधीजी से जब सरदार का परिचय हुआ, तो प्रारंभ में वे उन्हें 'भाई श्री' लिखा करते थे, लेकिन बाद में उनका संबंध 'भाई' और 'चिरंजीव' तक घनिष्ठ होता चला गया ।

बापू सरदार को कितना प्यार करते थे और उनके स्वास्थ्य की उन्हें कितनी फिक्र थी, इसका पता उनके पत्रों से चलता है । अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा :

"आप शरीर पर खूब अत्याचार कर रहे हैं । परंतु सरदार से कोई कुछ कह या करा सकता है ? स्वास्थ्य बिगाड़ लेंगे, तो बहुत सुनना पड़ेगा ।"

दूसरे पत्र में पूछा :

"आपका वजन कितना रहता है ? क्या खाते हैं ? दूध-दही कितना लेते हैं ? कुछ भेजूँ ? माँगे बिना तो माँ भी नहीं परोसती। और वह भी मेरे जैसी माँ ! फिर पूछना ही क्या ! अब सुबह की प्रार्थना में जाने का वक्त हो गया। इसलिए बस।"

एक बार जब सरदार बीमार पड़े, तो मीठी चुटकी लेते हुए लिखा :

"आप तो बीमार पड़ने ही वाले थे। आप दूसरों के सरदार हैं, लेकिन अपने तो दास ही मालूम होते हैं। सच्चे सरदार तो वे होते हैं, जो खुद अपने पर सरदारी भोगें। आप समय पर काबू रखें और सब बातों के नियम बना लें तो बहुत जियेंगे। कठौती कुंडे पर हँसती है, यों समझकर यह बात उड़ा न दें।"

एक और पत्र में लिखा :

"दवाओं के बल पर कहाँ तक टिकेंगे ? कौन-सा राज्य लेना है ? धीरे चलिये।"

कठौती लकड़ी की होती है और कूँडा पत्थर का। यहाँ बापू ने अपने-आपको 'कठौती' कहकर स्वयं अपनी अस्वस्थता पर भी व्यंग्य किया है। साथ ही स्वराज के सेनानियों द्वारा 'कौन-सा राज्य लेना है' का मधुर विनोद भी कितना सुन्दर बन पड़ा है।

बापू कम-से-कम शब्दों में, अपनी बात कहने और उसमें भी विनोद की गहरी चुटकी लेने से चूकते नहीं थे। सरदार के जन्म-दिवस पर बधाई भेजते हुए आपने लिखा :

"सुना है, आज आपका जन्म-दिवस है। इसीलिए सेवा के वर्षों में से एक वर्ष तो गया। ऐसे अनेक वर्ष जायँ, ऐसी कामना करना यह कहने के बराबर है कि आप दीर्घायु हों। देखना, हमें स्वराज्य लेकर ही जाना है।"

बापू सरदार को कितना प्यार करते थे, इसका पता निम्नलिखित घटना से चलता है :

सन् '३३ में जब बापू को गिरफ्तार कर यरवदा-जेल भेजा गया, तो

उससे एक दिन पूर्व ही सरदार को उस जेल से हटाकर नासिक भेज दिया था। बापू को जब इस बात का पता चला तो उन्हें अत्यंत दुःख हुआ। कहते हैं, यरवदा-जेल में बापू भर्तृहरि नाटक की एक पंक्ति याद कर अक्सर गुनगुनाया करते थे : 'ये रे जखम जोगे नहीं मटे।' (जोगी बन जाने से दिल का घाव नहीं मिटता।)

सरदार निरे नाम के सरदार नहीं थे, वरन् अपने दृढ़निश्चयीपन के कारण बापू भी उन्हें अपना गुरु मानते थे। देखिये, अपने एक पत्र में उन्होंने सरदार को लिखा :

"कुछ मामलों में मेरा सारा आधार सिर्फ आप पर रहता है, इसलिए मैं तो अक्सर एकलव्य की तरह करता हूँ। एकलव्य द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाकर और मूर्ति से ज्ञान प्राप्त करके, धनुर्विद्या में अर्जुन के बराबर हो गया। मैं आपकी मानसिक प्रतिमा बना लेता हूँ और उसे पूजता हूँ।"

बापू के पत्रों से पता चलता है कि उनका जीवन कितना व्यस्त था और वे किस तरह अपने व्यस्त जीवन में से भी पत्र लिखने का समय निकाल लिया करते थे। देखिये, अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा है :

"आप नाराज न हों। यह पत्र आपको २॥ बजे सबेरे लिख रहा हूँ। अलार्म ३ बजे का लगाया था। लेकिन १२ बजे के पहले ही बज गया और मैं उठ बैठा। दातुन करके लिखने बैठा और थोड़ा लिखने के बाद घड़ी पर निगाह पड़ी तो देखा १२ बजे हैं। काम इतना चढ़ गया है कि सोने की हिम्मत न हुई। इसलिए सोचा, जितना हो सके कर डालूँ। 'हरिजन' का काम लगभग पूरा करके अब आपको पत्र लिख रहा हूँ। फिर बा को लिखूँगा।"

अपने दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा :

"इस समय सबेरे के २॥ बजने जा रहे हैं। राष्ट्रीय सप्ताह शुरू होता है। आजकल उठने का यह समय साधारण बन गया है।"

एक और पत्र में लिखा :

"आज रात को एक बजे बिलकुल ताजा उठ बैठा हूँ। इससे चौंकिये नहीं, नाराज न होइये और चिंता में भी न पड़िये। यह तो ईश्वर की महिमा है।"

एक बार अपनी अस्वस्थता के बावजूद सरदार पटेल को पत्र लिखते हुए आपने लिखा था :

"आपको पिछला पत्र लिखने के बाद तुरंत ही हाथ से पत्र लिखना बंद करना पड़ा था। मैंने देखा कि मुझमें जरूरी शक्ति नहीं आयी थी। अब शक्ति आ गयी है या नहीं, यह आजमाने को जी कर रहा है। यह आजमाइश तो आपको पत्र लिखकर ही की जा सकती है न!"

बापू को इतना अधिक काम करते देखकर कोई रोकनेवाला न हो, ऐसी बात नहीं। समय-समय पर सरदार उन्हें खरी-खरी सुनाने से चूकते नहीं थे। एक बार अस्वस्थता के बावजूद उनके हाथ का लिखा पत्र पाकर सरदार ने महादेवभाई को लिखा था :

"बापू के हाथ का पत्र देखकर आनन्द तो हुआ, परन्तु साथ ही फिकर भी हुई। अभी हाथ से लिखने या लिखवाने का भी लोभ उन्हें छोड़ देना चाहिए। लिखना शुरू कर देंगे तो किसे लिखेंगे और किसे न लिखेंगे? विश्व को कुटुम्ब बनाकर बैठे हैं, इसलिए काजी को सारे शहर की फिकर और महात्मा को सारी दुनिया की फिकर। वहाँ अभी सबको भूलकर एक प्रभुजी को ही भजते रहने में सार है।"

अंत में उनके विनोदी स्वभाव की भी एक-दो झलकें देखियेगा। अपने यहाँ नाती के जन्म की बात सुनकर उन्होंने सरदार को लिखा था :

"मणिलाल की सुशीला के लड़का हुआ है। मणिलाल ने आज तक खबर ही नहीं दी। इस वंशवृद्धि में मेरी तो दिलचस्पी ही नहीं रही। अगर कुछ है तो आंतरिक उद्वेग। फिर भी यह कहने से कि कुदरत को कौन रोक सकता है या यूरोप की पद्धति (संतति-नियमन की) ग्रहण करके, 'चारु-लोचने! चलो आनंद मनायें और उसका परिणाम रोकें' की वृत्ति अपनाने से शुद्ध ज्ञान मिल ही नहीं सकता।"

एक और पत्र में लिखा है :

"मैं आनंद में हूँ। मेरी, आपकी, सबकी डोर 'मीरा के बालम' के हाथ में है। वह जैसे खींचेगा, वैसे हम खिचेंगे।"

एक और सूत्रवाक्य लीजिये :

"मुझे तो चिंता करने की फुर्सत ही नहीं मिलती, इसलिए चिंता न करने की सलाह देने की जरूरत नहीं रह जाती।"

और इस एक पत्र से उनके अंतिम दिनों की वेदना का पता चलता है। लिखते हैं :

"मेरे पास कोई न दौड़े। मदद देनेवाले तो बहुत हैं। मेरे जीने का आधार केवल हिन्दुस्तान की परम शांति है। उसे प्राप्त करने को आप लोग सब कुछ करेंगे ही। मेरी मृत्यु की आगाही पर जोर न देकर कहिये कि मेरी भूल हो, तो मुझे मरने देने में कोई हानि नहीं। मैं आनंद में हूँ।

बापू के आशीर्वाद!"

बापू और बा : ७ :

जाने क्यों, अनेक महापुरुषों ने विवाहित होने पर भी पत्नी को अपने मार्ग में बाधक माना तथा उसका परित्याग करके अकेले-अकेले ही मोक्ष की प्राप्ति की। लेकिन इतिहास में गांधीजी अकेले आदमी थे, जिन्होंने पत्नी को अपने साथ लेकर एक नवीन आश्रम-धर्म की स्थापना की तथा महात्मा का गौरवशाली पद प्राप्त किया। इसी नाते बा और बापू का नाम एक आदर्श दम्पती के रूप में भी सदा अमर रहेगा।

एक बार स्वयं गांधीजी ने 'बा' के बारे में लिखा था : "बा का जबर्दस्त गुण महज अपनी इच्छा से मुझमें समा जाने का था। यह कुछ मेरे आग्रह से नहीं हुआ था, लेकिन समय पाकर बा के अन्दर ही इस गुण का विकास हो गया था।" आगे चलकर एक जगह और उन्होंने

लिखा : "इच्छा से हो या अनिच्छा से, ज्ञान से हो या अज्ञान से, मेरे पीछे-पीछे चलने में बा ने अपने जीवन की सार्थकता मानी और शुद्ध जीवन बिताने के मेरे प्रयत्न में मुझे कभी नहीं रोका। इसके कारण जो भी हमारी बुद्धि-शक्ति में बहुत अंतर है, तो भी मुझे लगा है कि हमारा जीवन संतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी था।"

बा ने न सिर्फ सुखी आश्रम-जीवन को सरल-सुन्दर बनाने और रचनात्मक कार्य करने में ही, वरन् बापूजी द्वारा आयोजित सत्याग्रह-आंदोलनों में भी अपना समुचित योगदान दिया है। बात है दक्षिण अफ्रीका की। सन् १९१३ में बापू ने विवाह-कानून के खिलाफ जब वहाँ सत्याग्रह-आन्दोलन का आयोजन किया, तो बा ने कहा : "आप मुझसे इसकी चर्चा नहीं करते, इसका मुझे दुःख है। मुझमें ऐसी क्या खराबी है कि मैं जेल नहीं जा सकती? हारकर छूट जाऊँ, तो मुझे मत रखना। मेरे बच्चे तक सह सकें, आप सब सहन कर सकें और अकेली मैं ही न सहन कर सकूँ, ऐसा आप सोचते कैसे हैं? मुझे इस लड़ाई में शामिल होना ही होगा।" बा के इस दृढ़ निश्चय और आत्म-विश्वास से आखिर बापू को भी उन्हें स्वीकृति देनी ही पड़ी और यों बा प्रथम स्त्री सत्याग्रही के रूप में जेल गयीं।

सन् १९२२ में जब असहयोग-आंदोलन के फलस्वरूप बापू को गिरफ्तार करके छह वर्ष की कठोर सजा दी गयी तो सारा देश काँप उठा। लेकिन तब भी बा ने अद्‌भुत साहस का परिचय देते हुए देश से अपील करते हुए कहा : "आज मेरे पति को छह साल की सजा हुई है। इस जबर्दस्त सजा से मैं थोड़ी अस्थिर हुई हूँ, इसे मुझे मंजूर करना चाहिए। लेकिन हम चाहें तो सजा की मुद्दत पूरी होने से पहले ही उन्हें जेल से छुडा सकते हैं। सफलता पाना हमारे हाथ की बात है। मैं मेरे दुःख में हमदर्दी रखनेवाले और मेरे पति के लिए मुहब्बत रखनेवाले, सभी स्त्री-पुरुषों से प्रार्थना करती हूँ कि वे रात-दिन लगे रहकर रचनात्मक कार्यक्रम को ही कामयाब बनायें।"

सन् १९३० में जब बापू को आधी रात के वक्त गिरफ्तार किया गया तो बा ने कहा : "सरकार के पागलपन पर मुझे हँसी आती है। गांधीजी को गिरफ्तार करने के लिए आधी रात के वक्त डाका डालने की क्या जरूरत थी ? उनको पकड़ने के लिए इस सारे लश्करी लिबास की क्या जरूरत....अब गांधीजी तो गये। लेकिन जो काम हमें सौंप गये हैं, उसे पूरा करना ही अब हमारा धर्म हो जाता है। मैं लोगों से प्रार्थना करती हूँ कि वे अपनी कामनाओं और भक्ति की बाढ़ में आकर पागल न बनें, बल्कि मर मिटने की अपनी साध को प्रबल बनाकर इस लड़ाई को जारी रखें।"

और अंत में सन् '४२ के संसार-प्रसिद्ध आंदोलन में जब बापूजी बम्बई में गिरफ्तार हुए, तब बा उनके साथ थीं। बापू एक-ब-एक गिरफ्तार कर जेल पहुँचा दिये गये; लेकिन उस दिन उनका शिवाजी पार्क में भाषण होने-वाला था। बा ने झट से अपना कर्तव्य निश्चित कर बापू के स्थान पर भाषण देने का निश्चय कर लिया। पुलिस ने आकर जब बा से पूछा : "आप घर में रहेंगी या सभा में जायँगी ?" बा ने कहा : "मैं सभा में तो जाऊँगी ही" और इस तरह उन्हें भी गिरफ्तार कर जेल पहुँचा दिया गया। उसके बाद वे फिर कभी जेल से लौटकर नहीं आयीं और यों स्वराज्य के आंदोलन में उन्होंने अपना अपूर्व बलिदान दिया।

बा और बापू के आश्रम-जीवन के भी अनेक सुन्दर संस्मरण हैं। बापू का आश्रम एक ओर जहाँ विश्व की राजनीति का केन्द्र था, वहाँ दूसरी ओर वह अनेक रचनात्मक कार्यों का प्रयोग-स्थल भी था। अतएव नित्य प्रति वहाँ आनेवाले देश-विदेश के अनेक व्यक्ति, एक साथ बा और बापू के साथ बा और बापू के मार्गदर्शन और स्नेहपूर्ण आतिथ्य से वंचित नहीं रह पाते थे। जैसा कि अमेरिका के प्रसिद्ध पत्रकार लुई फिशर ने लिखा है : "संत महात्मा गांधी के लिए राजनीति कोई बहुत बड़ी चीज नहीं और मूँगफली कोई बहुत मामूली चीज नहीं। एक ओर यदि आप उन्हें विश्व के सम्मुख भारतीय आजादी और अहिंसात्मक आंदोलन की व्याख्या करते पायेंगे, तो दूसरी ओर आप उन्हें आश्रम में हाथ की चक्की के आटे और

हाथ के बने गुड़ का प्रयोग करते और उसका महत्त्व समझाते पायेंगे। आचार और विचार के समन्वय का ऐसा सुन्दर दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है।''

बा अत्यन्त ही सरल हृदय, सेवा-परायण और सत्कारनिष्ठ महिला थीं। आश्रम में बापू की भोजन-व्यवस्था से लगाकर उनकी सेवा के प्रत्येक कार्य को स्वयं हाथ से करने के लिए सदा उत्सुक रहती थीं। अपने जीवन में एकादशी, प्रदोष और अनेक धार्मिक उपवासों को करने के बाद भी वह एक-ब-एक किये जानेवाले बापू के राजनैतिक उपवासों को सहसा समझ नहीं पाती थीं, यद्यपि आगे चलकर उन्हें निबाहने में सम्पूर्ण सहयोग देने का प्रथम श्रेय भी बा को ही होता था। सन् '३२ में हरिजनों के प्रश्न को लेकर यरवदा-जेल में बापू के आमरण उपवास करने की बात जब बा को साबरमती-जेल में सुनायी गयी तो अत्यन्त ही बेचैन हो बा ने कहा : "हम भागवत पढ़ते हैं, रामायण-महाभारत पढ़ते हैं, लेकिन उनमें कहीं ऐसे उपवासों की बात नहीं आती। बापू की तो बात ही और है। वे ऐसा ही करते रहते हैं। अब क्या होगा ?'' अंत में जब बा को भी बापू के पास ही जेल में तबदील कर दिया, तो बा ने बापू को उपवास के लिए मीठा उलाहना देते हुए उनकी सेवा की जिम्मेदारी भी अपने ही ऊपर ले ली।

सन् '४३ में जब बापू ने पुनः अपने इतिहास-प्रसिद्ध उपवास का निश्चय किया, तो उनकी अवस्था व स्वास्थ्य को देखते हुए जेल के सब साथियों ने इसका विरोध किया। लेकिन बापू क्यों मानने चले ! बा इस निर्णय से काँप उठीं। जेल का वह दृश्य अत्यन्त ही हृदयद्रावक होता, जब बापू उपवास के सम्बन्ध में रोज ईश्वर से मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना करते थे और बा रोज तुलसीमाता की पूजा कर, ईश्वर से अपने पति की दीर्घायु के लिए और प्राणदान के लिए प्रार्थना करती थीं। एक दिन सरोजिनी नायडू ने कहा : "बापू, आपका उपवास बा को खतम कर डालेगा।'' बापू ने कहा : "मैं बा को तुम लोगों से ज्यादा पहचानता हूँ। आखिर मैंने बा के साथ साठ साल बिताये हैं।'' और सचमुच सब साथियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब बापू के उपवास के सम्बन्ध में दूसरे ही

दिन बा ने कहा : "जहाँ इतनी ज्यादा गड़बड़ चल रही है, बापू चुप कैसे बैठ सकते हैं ? सरकार के अत्याचारों के प्रति अपना विरोध जताने के लिए बापू के पास उपवास को छोड़कर दूसरा और साधन भी क्या है ?" लेकिन इन सबके बाद भी बापू के लिए बा की प्रार्थना निरन्तर जारी रही।

यह एक आश्चर्य की बात है कि दुनिया में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनमें से अधिकांश या तो स्त्री-द्रोही रहे हैं या उन्होंने स्त्री को अपने मार्ग में बाधक समझकर और त्यागकर ही महत्ता प्राप्त की है।

लेकिन इतिहास में गांधीजी पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपनी पत्नी को न सिर्फ जीवनभर अपने साथ रखकर, वरन् अपने प्रत्येक व्यक्तिगत प्रयोगों में और सार्वजनिक आन्दोलनों में भी साथ लेकर अभूतपूर्व विजय प्राप्त की है। अपने इस दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है कि "हम असाधारण दम्पति थे। हमारा जीवन सन्तोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी था।" दुनिया के अनेक कार्यों में व्यस्त रहने के बाद भी बा और बापू के सम्बन्ध अत्यन्त मीठे थे। राजकोट-सत्याग्रह के समय बा को लिखे गये बापू के पत्रों से उसका सहज अन्दाज लगाया जा सकता है। एक पत्र में उन्होंने लिखा : "राम-सीता के दुःख की तुलना में हमारे दुःख की क्या बिसात है ? तू घबराना मत।" दूसरे खत में उन्होंने लिखा : "तेरे पत्र में एक बात थी, जिसका जवाब देना रह गया है। तूने लिखा है, मैंने चलते समय तेरे सिर पर हाथ तक न रखा। मोटर चली और मैंने भी महसूस किया। लेकिन तू दूर थी। अब भी तुझे बाहर की निशानी चाहिए क्या ? यह क्यों मान लेती है कि मैं बाहर दिखाता नहीं, इसलिए मेरा प्रेम सूख गया है ? मैं तो तुझसे कहता हूँ कि मेरा प्रेम बढ़ा है और बढ़ता जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि पहले कम था, लेकिन जो था, वह अधिक निर्मल बनता जाता है।" और अन्त में उनका वह प्रिय वाक्य—"बापू के आशीर्वाद।" इसी तरह बापू के प्रति बा के सहज स्नेह का इस एक वाक्य से अन्दाज लगाया जा सकता है, जिसमें उन्होंने

लिखा था कि "मेरे जैसा पति तो दुनिया में भी किसीका नहीं होगा। सत्य के कारण वह सारे संसार में पूजा जाता है।"

जीवनभर बा ने बापू की जो सेवा की; वह तो अभूतपूर्व थी ही, लेकिन बापू की रक्षा के लिए बा ने जिस तरह प्राणोत्सर्ग किया, वह भी इतिहास की एक अनूठी घटना है। इसका वर्णन करते हुए डॉक्टर सुशीला नैयर ने लिखा—बात है आगाखाँ महल में बापू के अन्तिम उपवास के दिनों की—२२ फरवरी के दिन बापू जीवन और मरण के बीच झूल रहे थे। मीराबहन मुझे चुपके से बाहर बरामदे में बुला ले गयी। वहाँ 'बा' तुलसीमाता के सामने घुटने टेककर बैठी प्रार्थना कर रही थीं। उनके दुःख का भाव इतना करुण और इतना दीन था कि देखनेवाले की आँखें डबडबा आती थीं। बा अपने ध्यान में लीन थीं। उपवास के १३वें दिन, यानें २२ फरवरी को बापू दस मिनट के प्रयत्न से आधा औंस पानी भी न पी सके। थककर बेहाल हो गये और खाट पर पड़ गये। नाड़ी कमजोर पड़ गयी।....बा प्रार्थना में लीन थीं। ....मैंने डरते-डरते कहा : "बापूजी, क्या मोसंबी का रस लेने का समय नहीं आया?"

सात मिनट तक विचार करने के बाद बापू ने इशारे से मंजूरी दी। मैंने फौरन् ही दो औंस रस पानी मिलाकर बापू को पिलाया....और उसके शरीर में पहुँचते ही बापूजी के निस्तेज चेहरे पर जीवन की किरण झलकने लगी। इतने में बा आ पहुँचीं। भगवान् ने उनकी प्रार्थना सुन ली थी। ठीक २२ फरवरी '४४ को बा का देहान्त हुआ। किसीने कहा : "पिछले साल इसी दिन बापू यमराज के मुँह में पड़े हुए थे। बा ने सावित्री की तरह उन्हें छुड़ाया होगा और शर्त की होगी कि अगले साल, इसी दिन मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।" ऐसे उदाहरण इतिहास में बिरले ही मिलते हैं।

बापू ने भी बा की कुछ कम सेवा नहीं की। आगाखाँ महल में 'बा' की अन्तिम बीमारी के दिनों में, निमोनिया की खतरनाक अवस्था में भी

बा की खाट पर सबसे अधिक देर बैठने में बापू कभी थकते नहीं थे और कमजोर अवस्था में बा के थूक से मुँह पोंछने के रूमालों को भी धोने से नहीं हिचकते थे। साथियों के मना करने पर वे कहते : "उत्तरावस्था में ईश्वर ने मुझे इस तरह बा की सेवा करने का यह जो अवसर दिया है, उसे मैं अमूल्य मानता हूँ।"

अगस्त '४२ के आन्दोलन में बापू ने जो 'करो या मरो' का मंत्र दिया था, जेल में बापू के समक्ष 'महादेवभाई और बा का निधन' बापू के लिए सबसे बड़ी आहुति थी। लेकिन बापू जैसे अडिग सिद्धांतवादी ने, प्रलयंकर शङ्कर की तरह, इसे भी पीकर अपने-आपको विचलित न होने दिया। बा के प्रति उनके स्नेह और उनकी मृत्यु से हुई वेदना बा के निधन के बाद बापू द्वारा वाइसराय को लिखे गये इस पत्र से समझी जा सकती है। उन्होंने लिखा : "यद्यपि अपनी मृत्यु के कारण वह सतत वेदना से छूट गयी है, इसलिए उसकी दृष्टि से मैंने मौत का स्वागत किया है, तो भी इस क्षति से मुझे जितना दुःख होने की कल्पना मैंने की थी, उससे अधिक दुःख मुझे हुआ है। हम असाधारण दम्पति थे।" एक बार और उन्होंने बा के सम्बन्ध में कहा था : "और मैं अपनी पत्नी के बारे में अपने प्रेम और अपनी भावना का वर्णन कर सकूँ, तो हिन्दू-धर्म के बारे में अपने प्रेम और अपनी भावनाओं को प्रकट कर सकता हूँ। दुनिया की दूसरी किसी भी स्त्री के मुकाबले मेरी पत्नी मुझ पर ज्यादा असर डालती है।"

अपने अहिंसात्मक आंदोलनों के जरिये जिस तरह 'बापू' राजनैतिक क्षेत्र में शताब्दियों तक विश्व का मार्ग-प्रदर्शन करते रहेंगे, उसी तरह 'बा और बापू' के स्वरूप में भी वे मानवीय जगत् को प्रकाश देते हुए मनुष्य के इतिहास में सदैव अमर रहेंगे।

बापू और महादेवभाई : ८ :

महादेवभाई का सम्पूर्ण जीवन गांधीजी के चरणों में समर्पित एक विनम्र श्रद्धांजलि था। वह बापू के लिए जिये और उन्हींके लिए उन्होंने अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर दिया।

एक दिन उन्हें बापू का पत्र मिला : "मैं तुम्हें अपनी गोद में चाहता हूँ।" और उस दिन जो वह बापू के पास गये, तो पूरे पचीस वर्षों तक उनके विचारों और कार्यों से तदाकार हो मृत्यु तक उन्हींकी गोद में रहे।

वह बापू के सेक्रेटरी, साथी व सेवक के एक सम्मिलित पुलिंदा थे। स्वयं गांधीजी ने एक बार उनके बारे में कहा था कि "महादेव के चरित्र की सबसे बड़ी खूबी थी, मौका पड़ने पर अपने को भूलकर शून्यवत् बन जाने की शक्ति।....महादेव मुझमें पूरी तरह खो गया था।....वह मेरा अतिरिक्त शरीर था। महादेव ने आते ही मेरी सारी बातों का चार्ज ले लिया। वह मेरे सामान का ध्यान रखता, मेरे खाने का इन्तजाम करता, मेरे कपड़े धोता और मेरे सेक्रेटरी का काम करता।"

महादेवभाई जब बापू के पास गये, तब इतने सुन्दर और खिले हुए थे कि बापू कहा करते थे : "महादेव तो गुलाब का फूल है।" उसी पर से सरोजिनी नायडू ने उनका नाम 'गुल ए गुजरात' याने 'गुजरात का फूल' रख दिया था।

श्री प्यारेलालजी के शब्दों में कहें, तो "उनकी जिन्दगी की एकमात्र लगन यही थी कि जहाँ तक हो सके, बापू के बोझ को हलका करें और उनके विचार लोगों को समझायें। अगर बापू ने कताई का काम हाथ में लिया, तो उन्होंने कताई से ताल्लुक रखनेवाला सारा साहित्य पढ़ा और उसे 'यंग इण्डिया' और 'हरिजन' के लेखों के रूप में, संक्षिप्त में बापू के सामने रखा। और अगर बापू ने नयी तालीम, देहाती काश्तकारी या और कोई विषय हाथ में लिया, तो महादेवभाई उसके अध्ययन में लग गये और उसमें गहराई तक पैठ गये।"

घड़ी के काँटे की तरह बापू के नियमित जीवन के साथ चलना, आश्रम के कठोर-से-कठोर नियमों का पालन करते हुए उनके छोटे-से-छोटे सेवा-कार्य में हाथ बँटाना, 'हरिजन' के नियमित प्रकाशन और महत्त्व-पूर्ण पत्र-व्यवहार को निपटाने में योग देना और इन सबके बाद भी गांधीजी की कसौटी पर खरे उतरते हुए अपने अनुभव और उनके महत्त्व-पूर्ण विचार और कार्यों की डायरी रखना महादेवभाई जैसे विनम्र और महान् साधक का ही कार्य था।

महादेवभाई सुन्दर अक्षर, सुन्दर भाषा और मोहक शैली के लिए प्रसिद्ध थे। सन् '१३ में ही उन्हें लॉर्ड पार्ल की 'ऑन कम्प्रोमाइज' पुस्तक के अनुवाद पर अनेक विद्वानों के मुकाबले एक हजार का पुरस्कार मिला था। उनकी सुन्दर लिखावट के प्रति एक बार लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने ईर्ष्या व्यक्त की थी। उनकी शैली बापू से इतनी मिलती थी कि बापू की अस्वस्थता के दिनों उनके द्वारा लिखे अग्रलेखों को पहचानना तब तक मुश्किल होता था, जब तक कि उनके नीचे 'मो० क० गांधी' के बजाय 'म० ह० देसाई' न पढ़ लें। भाषणों की रिपोर्ट लेने में वह इतने सिद्धहस्त थे कि बापू का जब कोई भाषण हिन्दी में चलता, तब वह अंग्रेजी पत्रों के लिए उसका अंग्रेजी में अनुवाद और रिपोर्ट एक साथ ले लिया करते थे।

उनकी पत्रकारिता के बारे में बापू के इन वाक्यों से बड़ा और कौन-सा सर्टिफिकेट हो सकता है कि "उसकी कलम मुझसे ज्यादा आकर्षक (दिलचस्प) और मँजी हुई थी।"

महादेवभाई के चरित्र में इतनी शालीनता थी कि एक बार जब आगाखाँ महल में बापू के लिए आयी मोसम्बियों में से उनसे भी कुछ लेने के लिए कहा गया, तो उन्होंने उन्हें लेने से इनकार करते हुए कहा था कि "असल में ये बापू के लिए हैं। अपने हिस्से की जो खुराक हमें मिलती है, उससे ज्यादा मैं कुछ नहीं लेना चाहता। मैं बापू के साथ कई बार जेल में रहा हूँ। मगर फलों को कभी छूता भी नहीं था। कारण मैं जानता था कि अगर मैं अकेला होता, तो मुझे ये मिलनेवाले नहीं थे।"

बापू और महादेवभाई में अत्यन्त ही स्नेहिल संबंध थे। वे दोनों एक-दूसरे की पूरी खबरदारी रखते थे। बापू जब रात को पेशाब करने भी उठते, तो इस बात का ख्याल रखते कि उनकी आवाज से कहीं महादेव की नींद में खलल न पड़ जाय। इस सम्बन्ध में स्वयं महादेवभाई ने अपनी डायरी में लिखा है कि "बापू जब रात को पेशाब करने उठते हैं, तो उनकी खड़ाऊँ की खड़खड़ाहट से अक्सर मैं जाग जाता हूँ। जब उन्हें यह मालूम हुआ, तो वह खड़ाऊँ छोड़कर चप्पल पहनने लगे, कमरे में जाना बन्द कर दिया और बर्तन अपनी खाट के पास रख लिया और जब बर्तन कमरे में था, तब मैं जहाँ सोता था, उससे दूर का रास्ता लेकर चोर के पैरों कमरे में जाते थे।"

यही क्यों, महादेवभाई की चाय पीने की आदत थी। लेकिन वह बापू के उठने से पूर्व इस कार्य को निपटा लिया करते थे। एक दिन उन्हें उठने में देर हो गयी। जब वह उठे, तो यह देखकर बहुत शर्मिन्दा और आश्चर्यान्वित हुए कि बापू स्वयं उनके लिए चाय की प्याली लिये खड़े थे।

महादेवभाई पूरे पचीस वर्ष बापू के साथ रहे। यह पचीस वर्ष उनकी अखंड तपश्चर्या के वर्ष थे। बापू से भिन्न उनके लिए जीवन की कल्पना ही असम्भव थी। यही वजह है कि अगस्त-आन्दोलन के दिनों में जब वह बापू के साथ नजरबंद हो आगाखाँ महल में पहुँचे और बापू के उपवास की चर्चा चली, तो उन्हें क्षण-क्षण उपवास की चिंता सताने लगी। बापू की अवस्था और स्वास्थ्य को देखते हुए उस विकट अग्नि-परीक्षा की कल्पना से वह बेहद चिन्तित हो उठे, इतने चिन्तित कि उस क्षण को टालने के लिए ही उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगा दी।

उनके इस बलिदान पर सरोजिनी नायडू ने कहा था कि "अगर कभी किसीने दूसरे के लिए जीवन दिया है, तो वह 'महादेव' है। 'ईशु' प्रभु की तरह वह इसलिए मरे कि बापू जी सकें। मनुष्य दूसरे मनुष्य की इससे बढ़कर और क्या सेवा कर सकता है कि वह उसके लिए अपने प्राण ही न्योछावर कर दे।"

उन्होंने अनेक बार कहा था : "मैं ईश्वर से एक ही प्रार्थना किया करता हूँ कि मुझे बापू से पहले उठा ले।" और सचमुच उन्होंने अपने इस निश्चय को पूरा कर दिखाया।

एक दिन चुपके से जिस तरह उन्होंने अपने-आपको बापू की गोद में सौंप दिया था, उसी तरह एक दिन चुपके से वह बापू की गोद में अपना शरीर छोड़कर उनमें समा गये।

दुनिया के शोरोगुल से दूर, 'आजादी या मौत' के सिपाही बनकर आगाखाँ महल के एकान्त कोने में, जहाँ उनके 'आत्मदान' के इस महायज्ञ को देखने-सुननेवाला भी कोई न हो, बापू के अत्यन्त निकट वह अपने प्राणोत्सर्ग कर आजादी के महायज्ञ की एक मौन समिधा बने।

महादेवभाई के एकाएक निधन से बापू को कैसा मर्मान्तिक धक्का लगा था, इसका वर्णन करते हुए डॉ० सुशीला नैयर ने लिखा है : "महादेव-भाई के मृत शरीर के पास खड़े होकर बापू जैसे अडिग पुरुष ने अधीर होकर कहा था कि यदि एक बार भी वह मेरी ओर आँख खोलकर देख ले तो वह नहीं जायगा।"

फिर वह बोले : "बच्चे अपने माँ-बाप से पहले मरना चाहें, इससे बढ़कर बेरहमी और क्या हो सकती है।" और फिर अपने-आपको सँभालते हुए उन्होंने कहा था : "मौत कभी वक्त से पहले नहीं आती। महादेव ने पचास बरस में सौ बरस का काम पूरा कर डाला था, सो वह आराम करने चला गया, जिस पर उसका पूरा हक था।"

फिर वह तो महादेवभाई का ही भाग्य था कि जो कार्य बापू ने किसीके लिए नहीं किया था, वह सब यानी उनके शव को स्नान कराने से लेकर अग्नि-दान देने तक का सब काम बापू ने स्वयं अपने हाथों से किया। उन दिनों तो बापू की अजीब मन:स्थिति थी। वह कुछ दिन तक तो महादेवभाई की चिता की भस्म लेकर अपने मस्तक पर लगाने लगे थे।

इस पर बा ने कहा था : "शंकर तो विभूति लगाते थे । लेकिन मनुष्य को ऐसा करते नहीं देखा था ।"

लेकिन वह तो महादेव के बापू थे न ? या बापू के 'महा-देव' ।

इसके अलावा उनका एक और नियम था । वह नित्य महादेवभाई की समाधि पर फूल चढ़ाने जाया करते थे । महादेवभाई बापू को ईश्वर की तरह मानते थे, लेकिन बापू का कहना था : "मुझसे पहले जाकर वह मेरा पूज्य बन गया है ।"

ऐसे महादेवभाई के चरणों में आज हमारी शत-शत श्रद्धांजलियाँ अर्पित हैं । ●

मृत्युञ्जयी बापू : ८ :

गांधीजी मृत्युंजयी थे । वह जिंदगी और मौत को समान रूप से प्यार करते थे । उनका कहना था कि "इंसान सिर्फ मौत से बचने के लिए ही नहीं जीता । अगर वह ऐसा करता है, तो मेरी सलाह है कि वह ऐसा न करे । उसे मेरी सलाह है कि अगर वह ज्यादा न कर सके, तो कम-से-कम मौत और जिंदगी को प्यार करना सीखे । जिंदगी वहीं तक जीने लायक होती है, जहाँ तक मौत को दुश्मन नहीं, बल्कि दोस्त माना जाता है । जिंदगी के लालचों को जीतने के लिए एक बुजदिल अपनी इज्जत, अपनी औरत, अपनी लड़की, सब कुछ सौंप देता है और एक हिम्मतवर अपनी इज्जत खोने के बजाय मौत से भेंटना ज्यादा पसंद करता है । जब वक्त आयेगा, जो कि आ सकता है, तब मैं अपनी सलाह को लोगों की कल्पना के लिए नहीं छोड़ूँगा, बल्कि क्रिया की भाषा में करके उसे दिखा दूँगा ।"

गांधीजी ने अपने प्रत्येक कार्य को मृत्यु से मुकाबला लेकर सफलता दिलायी । जिस तरह एक बार उन्होंने स्वयं मृत्यु-शय्या पर लेटकर अस्पृ-

श्यता-निवारण के आंदोलन में प्राण फूँके थे, उसी तरह अपनी अंतिम जेल-यात्रा के दिनों, उतरती अवस्था में भी उपवास की अग्नि-परीक्षा देकर आजादी के आंदोलन को बल प्रदान किया।

वह जेल-यात्रा क्या थी, मानव-जीवन की सबसे बड़ी कसौटी थी। इसी बार उन्हें अपने जीवन के अभिन्न साथी महादेवभाई और बा को खोना पड़ा। और इसी बार उन्होंने अपने इक्कीस दिन के उपवास के जरिये मृत्यु-स्नान किया। वे क्षण कितने हृदयद्रावी रहे होंगे, जब उनकी गिरफ्तारी के ठीक सातवें दिन महादेवभाई का निधन हो गया और उनकी रिहाई के सिर्फ एक माह पूर्व बा भी चल बसी थीं।

लेकिन इस बार तो मानो वह सब कुछ सहने का निश्चय किये थे। भारतीय आजादी के लिए उन्होंने अपने प्रिय-से-प्रिय जन और जीवन की बाजी लगाने की तैयारी कर ली थी। उपवास के समय उन्होंने कहा था :

"सत्ता पाने के लिए हमें बहुत कष्ट सहने होंगे, कुर्बानियाँ करनी होंगी। उपवास तो एक छोटी-सी चीज है। हजारों-लाखों आदमी इस तरह कष्ट सहन करें, तो कुछ हो सकता है।"

अपनी गिरफ्तारी के समय हरएक कार्यकर्ता से उन्होंने कहा था कि वे अपने कंधे पर 'करेंगे या मरेंगे' का बिल्ला लगा लें, ताकि आजादी का एक-एक सिपाही, जो अहिंसात्मक रूप से मरे, उस पर निशान के तौर पर ये शब्द 'करेंगे या मरेंगे' मौजूद हों।

प्रोफेसर भंसाली के उपवास पर वह बोले : "मेरी मानसिक तैयारी है कि अगर इजाजत न मिले, तो इस वक्त एक भंसाली नहीं, वरन् अनेक भंसाली खोने की तैयारी रखना है।"

श्री किशोरलालजी मश्रूवाला की जेल में अस्वस्थता की बात सुनकर आपने कहा था : "मैंने तो किशोरलाल को खोने की पूरी तैयारी कर ली है। मुझे यह सुनकर जरा भी आश्चर्य नहीं होगा कि किशोरलाल महादेव की तरह नागपुर-जेल में ही चल बसा। अहिंसक लड़ाई दूसरी तरह चल नहीं सकती।"

वह आजादी के लिए इतने बेचैन थे कि एक बार जेल में आपने कहा था : "या तो भारत आजादी प्राप्त करेगा या महादेव के पास मेरी भी समाधि बनेगी।"

प्राणदान के बारे में आपका कहना था : "दुनिया में कोई भी काम प्राणदान दिये बिना हो नहीं सकता। आपका प्रेम मुझ पर मेरी दृढ़ता के कारण है, प्राणदान देने की मेरी शक्ति पर अवलम्बित है।"

मृत्यु को तो वह अपने लक्ष्य के चलते मिलनेवाले एक मित्र की तरह मानते थे। इस सम्बन्ध में आपका कहना था कि "मेरी फिक्र किसीको नहीं करनी है। फिक्र अपने लिए की जाय। हम कहाँ तक आगे बढ़ रहे हैं और देश का कल्याण कहाँ तक हो सकता है, इसका ध्यान रखें। आखिर में सब इंसानों को मरना है। जिसका जन्म हुआ है, उसे मृत्यु से मुक्ति नहीं मिल सकती। ऐसी मृत्यु का भय क्या? शोक भी क्या करना? मैं समझता हूँ कि हम सबके लिए मृत्यु एक आनंददायक मित्र है। हमेशा धन्यवाद के लायक है।"

अपने प्रयत्नों के प्रति उनमें ऐसी दृढ़ आस्था थी और अपने निश्चय के वह ऐसे अडिग हिमालय थे कि मौत भी उन्हें अपने मार्ग से विचलित करने की क्षमता नहीं रखती थी। इस संबंध में आपका कहना था : "मृत्यु प्रयत्न का अंत नहीं है। अगर मनुष्य के प्रयत्न का अंत मृत्यु हो, तो जगत् का शाश्वत नियम अर्थात् परमात्मा एक मजाक की चीज बन जाता है। हममें इतनी श्रद्धा होनी चाहिए कि ठीक तरह से व्यतीत किया हुआ जीवन और भी उत्कृष्ट और समृद्ध जीवन का प्रारम्भ है।"

"मौत से किसीको डरना नहीं चाहिए। हर इन्सान को मरना ही होगा। मौत से कोई बच नहीं सकता। लेकिन अगर आप हँसते-हँसते मरेंगे, तो नयी जिन्दगी पायेंगे और नये हिन्दुस्तान को जन्म देंगे।"

अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में एक बार उन्होंने कहा था : "यदि 'राम-नाम' का मंत्र मेरे हृदय में गहरा उतर जायगा, तो मैं कभी बीमार होकर नहीं मरूँगा।"

"यदि मैं रोग से मरूँ, तो यह मान लेना कि मैं इस पृथ्वी पर दंभी और रावण जैसा राक्षस था। परन्तु यदि 'राम-नाम' रटते जाऊँ, तो ही मुझे सच्चा ब्रह्मचारी, सच्चा महात्मा मानना।"

मृत्यु से कुछ दिन पूर्व जब प्रार्थना-सभा में बम फटा और लोगों ने आपके बचने पर बधाई दी, तो आपने कहा था :

"इसमें बधाई की कौन बात ? अगर सामने बम फूटे और मैं न डरूँ, तो आप देखेंगे और कहेंगे कि वह बम से मर गया, तो भी हँसता ही रहा। आज तो मैं तारीफ के काबिल नहीं हूँ।"

उनका संपूर्ण जीवन देश के चरणों में समर्पित एक विनम्र श्रद्धांजलि था। अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में उनका कहना था :

"हमला हो, कोई पुलिस भी मदद पर न आये, गोलियाँ भी चलें और तब भी मैं स्थिर रहूँ, ऐसी शक्ति ईश्वर मुझे दे। तब मैं धन्यवाद के लायक हूँ।"

और ईश्वर ने उन्हें ऐसी शक्ति दी कि वह प्रार्थना की वेदी पर अपने प्रभु के चरणों में 'राम' का नाम स्मरण करते हुए आजादी के वृक्ष को अपनी मौत से सींचकर अमर हुए।

ऐसे मृत्युंजयी बापू के चरणों में आज भी हमारा शत-शत प्रणाम। ●

गांधीजी का पत्र-साहित्य : १० :

गांधीजी के पत्र विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। दुनिया के प्रायः प्रत्येक देश से उनके नाम पत्र आते थे और वे उन सबका जवाब प्रायः अपने हाथ से लिखकर दिया करते थे। उन पत्रों की संख्या इतनी अधिक हुआ करती थी कि एक हाथ से उनके जवाब लिखना मुश्किल होता था। लेकिन गांधीजी तो सव्यसाची थे न! उन्हें दोनों हाथों से लिखने की कला सधी थी।

कभी-कभी इन पत्रों के पते भी अत्यन्त मनोरंजक हुआ करते थे। एक बार सुदूर विदेश से आये हुए एक पत्र पर बापू का पता लिखा था : "महात्मा गांधी, इंडिया" और वह उन्हें मिल गया था। एक और भाई ने तो, बापू को लिखे एक पत्र पर बजाय उनका पता लिखने के, पते के स्थान पर गांधीजी का एक चित्र चिपका दिया था और डाकखाने-वालों ने वह पत्र भी सुदूर सेवाग्राम की उनकी कुटिया तक पहुँचा दिया था।

गांधीजी कम विनोदी नहीं थे। उनका विभिन्न व्यक्तियों के साथ भिन्न-भिन्न सम्बोधनों के रूप में मधुर विनोद चलता रहता था।

श्री राजगोपालाचार्य को वह लिखते :

"प्रिय सी० आर०,

बहुत-बहुत प्यार।"

श्री केलनबेक से उनका मजाक चलता :

"प्रिय लोअर हाउस,

अपर हाउस की तरफ से खूब प्यार।"

जेल में बन्द अपने साथियों को लिखते :

"तुम सबको,

पिंजरे में बन्द पक्षियों को प्यार।"

इन पत्रों से यह भी पता चलता है कि किस तरह वह अपने व्यस्त जीवन में से भी पत्र लिखने के लिए समय निकाल लिया करते थे।

मीराबहन को लिखे अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा था :

"यह पत्र ऐसे समय में लिखा जा रहा है, जब एक हाथ में तरकारी और दूसरे में कलम है। डाक का समय निकट है। इसलिए तुम्हें केवल प्रेम ही भेज सकता हूँ।"

एक दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा :

"जब तक तरकारी काटने के लिए तैयारी की जा रही है, तब तक थोड़ा-सा वक्त है।"

और इस वक्त का उपयोग उन्होंने यह नन्हा-सा पत्र लिखने में कर लिया था।

यहाँ तक कि वह नींद आने के क्षण तक भी काम करना नहीं छोड़ते थे।

एक पत्र के अन्त में उन्होंने लिखा : "अब मुझे नींद आ रही है।"

वह प्रत्येक पत्र को डाक में डालने से पहले पढ़ लिया करते थे और जिसे वह दुबारा नहीं पढ़ पाते थे, उसके एक कोने पर 'दुबारा नहीं पढ़ा' अथवा 'दुबारा अधूरा ही पढ़ा' लिख दिया करते थे।

उनकी पैनी दृष्टि से एक भी महत्त्व की बात छूट नहीं पाती थी। उनका कहना था कि "जिस बात में मनुष्य का कल्याण समाया हुआ है, उसे मैं कभी नहीं भूलता।"

इसीसे एक ओर जहाँ वह पुत्र-वधू को इस बात की याद दिलाने से नहीं चूकते थे कि "बापू के कान में डाले जानेवाले तेल की बूँदों में लहसन की कली को अवश्य कड़कड़ा लिया करना। उससे शीघ्र लाभ होता है।" वहाँ दूसरी ओर वह अपने जैसे 'अधनंगे फकीर' को कुचल डालने के इच्छुक अपने प्रबलतम विरोधी श्री चर्चिल को भी यह लिखने से नहीं चूकते थे कि "आप सम्पूर्ण विश्व की जनता के हित के लिए मुझ पर विश्वास करें और मेरा प्रयोग करें।"

गुरुदेव को पत्र

सन् '३१ में अस्पृश्यता-निवारण के लिए किये गये उपवास के समय उन्होंने जो पत्र लिखे थे, उससे उनके हृदय की विनम्रता एवं अपने निश्चय के प्रति दृढ़ता का पता चलता है।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उन्होंने लिखा था :

"आज दोपहर को मेरा अग्निप्रवेश होगा। आप मेरे सच्चे मित्र हैं, क्योंकि आप साफ कहनेवाले हैं। और जो दिल में होता है, वह स्पष्ट कह देते हैं। आपका दिल मेरे इस काम को पसंद करे, तो मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए। वह मुझे बल देगा।"

श्री जवाहरलाल नेहरू को लिखा :

"कसौटी के इन तमाम दिनों में तुम हमेशा मेरे चक्षु के सामने रहे हो। तुम्हारी राय जानने की मुझे बड़ी उत्सुकता है। तुम जानते हो कि तुम्हारी राय को मैं कितनी कीमती मानता हूँ।"

श्री रोम्यां रोलां को लिखा :

"अपने जीवन के एक महान् कार्य का आरम्भ करते समय आपको इतना लिखने की इच्छा होती है कि आपके और आपकी महान् पत्नी तथा भावुक बहन के साथ बिताये दिन मेरे लिए बहुत कीमती हैं।"

इसी बीच विनोबा का एक पत्र अपने काम के सिलसिले में बापू के पास आया था। उन्हें लिखा :

"तुम गरीबों को काफी फुसलाते दीखते हो। मेरे जैसे गरीब को, जब वह मृत्युशय्या पर होने की तैयारी करे तब, लिखते हो : "अब आरम्भ किया है, तो नियमित लिखूँगा।" मगर भगवान् जाने। कृतयुगियों की प्रतिज्ञाएँ झूठी होते नहीं जानीं। इसलिए तुम्हारे प्रतिज्ञा-पालन के लिए ही मुझे इस बिस्तर से उठना हो तो भले। तो तुम्हारे पत्र नियमित मिलते रहने की आशा करूँगा।"

सजीव भाषा

सत्य के निकट होने के कारण उनकी भाषा इतनी सजीव होती थी कि उसमें साहित्यिक सुन्दरता के सहज ही दर्शन किये जा सकते हैं।

देखिये, पाले से बरबाद एक खेत का वर्णन करते हुए गांधीजी ने लिखा है :

"मुझे तो सारा खेत रोता-सा नजर आता है।"

गांडीव चरखे के बारे में लिखा :

"उसके हरएक भाग से मेरी राय में गरीबों के लिए चिंता जाहिर होती है।"

जेल में रहते जब मीराबहन ने उनके स्वास्थ्य-समाचार जानने के प्रति चिन्ता व्यक्त की, तो उन्हें लिखा :

"अगर मैं सचमुच बीमार हुआ, तो दीवारें बोल उठेंगी।"

कैसी काव्यमयी भाषा है !

मधुर विनोद

उनके पत्र मधुर विनोद से खाली नहीं होते थे। एक बार एक छोटे-से पत्र में उन्होंने सिर्फ इतना ही लिखा था :

"हम सब अच्छे हैं और तुम दोनों के लिए गाड़ीभर प्रेम भेजते हैं।"

एक पत्र में मेढक और बन्दर की मनोरंजक तुलना करते हुए लिखा :

"पता नहीं क्यों मुझे मेढक निस्सहाय जीव प्रतीत होते हैं। वे न दौड़ सकते हैं, न उड़ सकते हैं। उधर बन्दर पर मुझे कभी दया नहीं आती। वह बड़ा सूझ-बूझवाला और शैतान प्राणी है और उसे हमें छकाने में मजा आता है। उसमें 'कृतज्ञता' जैसी चीज ही नहीं है।"

एक पत्र में शरीररूपी 'गधे भाई' के बारे में लिखा :

"संत फ्रांसिस अपने शरीर को 'गधा' कहते थे, फिर भी उसकी कुछ सँभाल रखते थे। और आखिर तो गधा बहुत ही उपयोगी और धीरजवाला जानवर है। यह 'गधा भाई' अगर ठीक ढंग से रखा जाय, न उसका लाड़-प्यार किया जाय और न लापरवाही की जाय, तो उतना ही उपयोगी हो सकता है।"

अन्त में जैसा कि एक बार उन्होंने नारणदासभाई को लिखा था : "जो भी आज अपने कार्य में ईमानदारी से संलग्न है, मेरा आशीर्वाद 'अंजलियाँ' भर-भरकर उन सबके साथ है।"

बापू के पत्र, मीरा के नाम : ११ :

मीराबहन गांधीजी के पास आने के दिन को अपना जन्म-दिन मानती हैं। उनका यह कहना है कि चूँकि इस दिन उनका पुराना जीवन खतम होकर उन्होंने एक नये जीवन में प्रवेश किया है, अतएव यही उनका सच्चा जन्म-दिन होना चाहिए।

गांधीजी के साथ अपनी पिछली जेल-यात्रा के दिनों आगाखाँ महल में जब उनका जन्म-दिन मनाया गया, तो उस दिन मीराबहन को बापू के पास आये १९ वर्ष हुए थे ।

इस पर गांधीजी ने विनोद करते हुए कहा था कि "मीराबहन की १९वीं वर्षगाँठ उनकी ५२ वर्ष की उम्र में आयी है ।"

बापू के चरणों में

मीराबहन गांधीजी के पास आने के दिन को अपना जन्म-दिन ही नहीं मानतीं, वरन् इस दिन से उन्होंने अपने जीवन में आमूल परिवर्तन भी किये । वास्तव में आप एक अंग्रेज सेनापति की लड़की हैं और आपका नाम है 'मिस स्लेड' । 'मीरा' आपको गांधीजी के द्वारा दिया गया हिन्दुस्तानी नाम है । बचपन से ही आपमें सेवा-वृत्ति और आध्यात्मिक प्रवृत्ति की ओर विशेष रुचि थी । आपने गांधीजी के पास आने की घटना का जिक्र करते हुए लिखा है कि "बिथोवन के संगीत ने मुझे रोम्यां रोलां के पास पहुँचा दिया और रोम्यां रोलां के जरिये मैं बापू के पास आ गयी ।"

बात यह हुई कि जब आप रोम्यां रोलां से मिलीं, तो उन्होंने आपसे अपनी 'गांधीजी' नामक पुस्तक का जिक्र किया, जो उन दिनों छप रही थी ।

उसके प्रकाशित होते ही आपने तुरन्त उसे खरीदा, पढ़ा और पढ़कर कुछ इस कदर उससे प्रभावित हुई कि उसी क्षण से आपने अपने-आपको गांधीजी के चरणों में समर्पित करने का निश्चय कर लिया । यही नहीं, वरन् उसके तुरंत बाद हिन्दुस्तान आने का जहाजी टिकट भी खरीद लिया, किन्तु बाद में सोचा कि गांधीजी के 'आश्रम-जीवन' के अनुकूल बने बिना भारत जाने से भी क्या लाभ होगा, अतएव टिकट बदलवाकर साल-भर बाद के लिए जगह सुरक्षित करवा ली और पूरे एक वर्ष तक अपने-आपको आश्रम-जीवन के अनुकूल बनाने के लिए पूर्ण शाकाहारी भोजन, जमीन पर पलथी मारकर बैठने, उर्दू-हिन्दी का अभ्यास और कताई,

बुनाई व पिंजाई आदि के कार्य भी सीख लिये। उसके बाद एक पत्र द्वारा बापू की अनुमति लेकर ता० ७ नवम्बर १९२५ को जो आप गांधीजी के पास आयीं, तो आज बापू के निधन के बाद भी बापू के चरणों पर चलते हुए दरिद्रनारायण की सेवा में संलग्न हैं।

बापू के पत्र

गांधीजी का यह स्वभाव था कि एक बार जो भी उनके साथ रहने का विश्चय करके आया, उसे उन्होंने अपने स्नेह से ढँकते हुए पारिवारिक-सा बना लिया। मीराबहन को वे अपनी बेटी कहा करते थे। मीरा-बहन के नाम उन्होंने जो पत्र लिखे थे, वे सब 'बापू के पत्र मीरा के नाम' से नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद द्वारा पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। ये पत्र गांधी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। जैसा कि इसकी भूमिका में लिखा है : "यहाँ कोई साहित्यिक शैली या दार्शनिक उड़ान का प्रश्न नहीं है। यह तो एक आध्यात्मिक पिता का अपने ठोकर खाते हुए बच्चे को दिया हुआ अत्यंत सीधा-सादा और प्रेमपूर्ण उपदेश है।" इसमें कुल ३८६ पत्र संग्र-हीत हैं। इन्हें पढ़ने से लगता है कि गांधीजी किस तरह अपने कार्यव्यस्त जीवन के बावजूद भी अपने नजदीकी व्यक्तियों की खबर रखते थे, सार-सँभाल लेते थे, कड़ी-से-कड़ी परीक्षा लेते थे और यों उनके जीवन-निर्माण में अपना योगदान दिये रहते थे।

अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा है : "तुम्हें चाहिए कि अपनी दिनचर्या मुझे लिखो और प्रार्थना, अध्ययन तथा भोजन का हाल बताओ। बताओ, तुम क्या खाती हो ? कितना दूध लेती हो ? वहाँ मच्छर हैं ? घूमने नियम से जाती हो ? हिन्दी कुछ लिखती हो ? आदि।"

साथ ही इन पत्रों से यह भी पता चलता है कि गांधीजी किस तरह अपने महान् राजनैतिक कार्यों के साथ ही साथ आश्रम के छोटे-छोटे कार्यों में भी हाथ बँटाते थे और इस बीच उन्हें जो समय मिलता था, उसके क्षण-क्षण का उपयोग किया करते थे।

अपने एक पत्र में वे लिखते हैं : "यह ऐसे समय में लिखा जा रहा

है, जब एक हाथ में तरकारी और दूसरे में कलम है। डाक का समय निकट है, इसलिए तुम्हें केवल प्रेम ही भेज सकता हूँ।"

दूसरे पत्र में लिखा है : "जब तक तरकारी काटने के लिए तैयार की जा रही है, तब तक थोड़ा-सा वक्त है।" और इस वक्त का उपयोग उन्होंने अपना यह नन्हा-सा पत्र लिखने में कर लिया।

यहाँ तक कि वे नींद आने के क्षण तक भी काम नहीं छोड़ते थे।

एक पत्र के अंत में उन्होंने लिखा है :

"अब मुझे नींद आ रही है।"

उनका यह नियम था कि वे प्रत्येक पत्र को डाक में डालने से पहले पढ़ लिया करते थे। और जिसे वे दुबारा नहीं पढ़ पाते थे, उसके एक कोने पर 'दुबारा नहीं पढ़ा' अथवा 'दुबारा अधूरा ही पढ़ा' लिख दिया करते थे।

दीवारें बोल उठेंगी

गांधीजी की भाषा सरल होने पर भी सत्य से सीधा सम्बन्ध रखने के कारण इतनी सजीव होती थी कि उसमें सहज ही साहित्यिक सुन्दरता का दर्शन हुए बिना नहीं रहता था।

पाले से बर्बाद एक खेत का जिक्र करते हुए आपने लिखा है :

"सारा खेत रोता-सा नजर आता है।"

गांडीव चरखे का वर्णन करते हुए लिखा :

"इसके हरएक भाग से मेरी राय में गरीबों के लिए चिन्ता जाहिर होती है।" जब बापूजी जेल में थे, तो मीराबहन उनके समाचार जानने के लिए उत्सुक रहा करती थीं। इस पर जेल से एक पत्र में गांधीजी ने लिखा :

"अगर मैं सचमुच बीमार हुआ, तो दीवारें बोल उठेंगी।"

दूसरे एक पत्र में लिखा है :

"अच्छी और बुरी खबरें दोनों ही तुम पर से इस तरह गुजर जानी चाहिए, जैसे बतख की पीठ पर से पानी।"

दिमाग केवल डाकघर

एक पत्र में दिल और दिमाग की एकता के बारे में लिखा है :

"दिमाग को इस तरह इस्तेमाल करने की जरूरत है, मानो वह केवल डाकघर है। जो कुछ उसमें आता है, वह मानो फौरन् कार्रवाई के लिए दिल के सिपुर्द कर दिया जाता है या वहाँ भेजने के अयोग्य समझा जाकर उसी वक्त फेंक दिया जाता है। दिमाग के अच्छी तरह यह काम न कर सकने के कारण ही लगभग तमाम शारीरिक खराबियाँ होती हैं और मानसिक थकान भी होती है। अगर दिमाग सिर्फ अपना काम करता रहे, तो कभी दिमाग को थकावट होने की जरूरत न रहे।"

जीवन-सूत्र

अब कुछ जीवन-निर्माणकारी, हृदयस्पर्शी सूत्रवाक्य भी देखिये :

"मुझे सबसे ज्यादा चिंता इसकी है कि तुम जैसो नहीं हो, वैसी दीखने की कोशिश न करो। तुम जैसी हो, वैसी ही स्वीकार करना और तुम्हें जैसी बनना चाहिए, वैसी बनने में मदद देना मेरा धर्म है।"

"व्रतों के बारे में यह नियम है कि जब शंका हो, तब अपने विरुद्ध अर्थ लगाओ यानी अधिक प्रतिबन्ध के पक्ष में लगाओ।"

"आलोचना करने के अधिकार के लिए हममें खास समझ और पूरी सहिष्णुता, प्रेम, शक्ति होनी चाहिए।"

"जिनसे मुझे सबसे ज्यादा मोहब्बत होती है, उनके प्रति मेरी कठोरता ऐसी ही है।"

चूँकि मीराबहन बापू के विचारों से प्रभावित होकर बापू के नजदीक रहने के लिए आयी थीं, लेकिन गांधीजी नहीं चाहते थे कि उनके सब साथी उनसे घिरकर रहें, साथ ही वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि जिस कार्य में वे संलग्न हैं, उसमें एक न एक दिन सब साथियों से वियोग अवश्यंभावी है। इसलिए मीरा के आते ही उन्होंने उनसे जो कुछ भी कहा, उसमें आज भी हम सबके लिए संदेश अंतर्निहित है। उन्होंने कहा :

"तुम मेरे पास मेरे खातिर नहीं, बल्कि मेरे उन आदर्शों के खातिर आयी

हो, जिन पर मैं यथाशक्ति अमल करता हूँ। अब तुम्हारा यह काम है कि उन आदर्शों का हिसाब लगाओ और जितनी पूर्णता से उनका पालन करने की शक्ति ईश्वर ने मुझे दी है, उससे अधिक पूर्णता के साथ उनका पालन करो। जो ऐसा करेगा, वही मेरा प्रथम वारिस और प्रतिनिधि होगा।''

बापू के आशीर्वाद : १२ :

जिन्होंने भी बापू को स्नेह से पत्र लिखा, बापू के आशीर्वाद सदा उनके साथ रहे। आज भी उनके पत्रों में 'महात्मा या महापुरुष' से भिन्न एक मनुष्य के मनुष्य के प्रति प्यार के दर्शन किये जा सकते हैं।

जिन्होंने अपने जीवन में अनेक समस्याओं को सुलझाया, उन्हींके सामने जब कोई दुविधा आयी तो उन्होंने उसे पैसे को चित-पट करने के रूप में ईश्वर के हाथों सौंपकर सुलझाया है। यह उनकी अडिग ईश्वर-भक्ति का प्रतीक है।

यही बात एक बार आपने श्री जमनालालजी बजाज से भी कही थी :

''यह करना या यह न करना, इस बारे में मन शंकित हो तो **'ढब्बू नाखवो'** पैसा चित-पट डालना या किसी छोटे बालक की तरफ से ईश्वर को याद कर चिट्ठी निकालना। श्रद्धा रखकर इस मुताबिक काम करना।''

जिस विषय में उनका प्रवेश नहीं होता था, वहाँ वे वैसा जाहिर करने में भी हिचकते नहीं थे।

एक बार जब श्री श्रीमन्नारायणजी ने अपने 'नये युग का राग' नामक कविता-संग्रह पर बापू की सम्मति चाही, तो उन्होंने लिखा था : ''कविताएँ मुझे अच्छी लगी हैं। हेतु स्पष्ट और निर्मल है। काव्य की

दृष्टि से मैं कुछ भी अभिप्राय देने योग्य अपने को नहीं मानता हूँ। तुम्हारी कृति को प्रकट करने के बारे में तो कवि लोग ही अभिप्राय दे सकते हैं।''

अपने कार्य-व्यस्त जीवन के बावजूद वे दूसरों के स्वास्थ्य की बराबर खबरदारी रखते थे और साथ ही किसीके अस्वस्थ होने पर मीठी चुटकी लेने से भी नहीं चूकते थे।

एक बार श्रीमन्जी को लिखा :

''कल ही सुना कि तुमको चार दिन से अविच्छिन्न बुखार आ रहा है। क्या शादी की, इसलिए ?''

लेकिन अपनी अस्वस्थता की बात को वह उतनी ही सरलता से मजाक में उड़ा जाते थे।

एक बार एक पत्र के जवाब में अपने स्वास्थ्य के बारे में लिखा था :

''मेरी सर्दी की बात निकम्मी समझो। थोड़ी थी, लेकिन मैं 'महात्मा' हूँ न ?''

ओम (श्री जमनालालजी की तीसरी पुत्री) से बापू का अत्यन्त ही मीठा मजाक चलता था। उसे बापू 'सोती सुन्दरी' कहा करते थे। जिनके पत्र पाने के लिए सारा जगत् उत्सुक रहता था, वही अपने से छोटों का पत्र पाने के लिए किस तरह मधुर उलाहना दिया करते थे, इसका आनन्द भी लीजिये।

एक पत्र में ओम को बापू ने लिखा था :

चि० ओम उर्फ सोती सुन्दरी,

'खत लिखकर बड़ी मेहरबानी की। मेरे नाम से भी नन्दादेवी को प्रणाम करना ! अब तो तू पहाड़ों में रहनेवाली बनी। हम लोगों की याद करती है, यह कुछ छोटी बात नहीं है। तुम सब खुश रहो।''

बापू के आशीर्वाद

दूसरे पत्र में लिखा है :

"चाहे जैसे अक्षर बनाकर केवल वचन का पालन करने के खातिर बेगार टालने को तुम पत्र लिखो, तो मुझे तुम्हारे पत्र नहीं चाहिए। मैंने क्या यह नहीं सिखाया कि जो करो, वह ठीक से करो और सुन्दरता से करो।"

पत्रों में भी वह लिखावट का, छोटी-से-छोटी बातों का कितना बारीकी से खयाल रखते थे, इसका उदाहरण श्री कमलनयनजी को लिखे एक पत्र में देखिये। लिखा है :

चि० कमलनयन,

"तेरे अक्षर सुन्दर तो लगते हैं, लेकिन स्पष्ट नहीं हैं। 'द' और 'ह' एक जैसे होते हैं। 'अच्छा' में 'अ' अधूरा है और 'च्छा' में 'च' अलग लगाया है। 'छा' 'ध्य' पढ़ा जाता है।"

बड़ी-से-बड़ी राजनैतिक समस्याओं के बीच भी आदमी के दुःख-दर्द की बात को वह भूल नहीं पाते थे। यही उनकी सबसे बड़ी महानता थी।

देखिये, ओम को अपने एक पत्र में आपने लिखा था :

चि० ओम,

"यह खाते-खाते लिख रहा हूँ, इस कारण पेंसिल से। खाते-खाते लिखना कुटेव है। पेंसिल से लिखना भी कुटेव है। इसकी नकल मत करना। अभी भी तेरा कान दुखता लगता है। तुम्हें बम्बई जाना चाहिए।"

—बापू के आशीर्वाद

अपने से छोटों की ऐसी खोज-खबर लेनेवाला ऐसा मसीहा अब धरती पर कहाँ मिलेगा।

विनोदी बापू : १३ :

अपने गंभीर राजनैतिक कार्यों के बावजूद बापू के चेहरे पर एक दिव्य आभा, एक विश्व-मोहिनी मुस्कान खेलती रहती थी। इसी मोहिनी मुस्कान को लेकर दीनबंधु एंड्रूज तो उन्हें प्यार से 'मोहन' ही कहा करते थे। चाहे वह आश्रमवासी साथियों से बातचीत कर रहे हों, किसी विदेशी पत्रकार को भेट दे रहे हों या किसी गंभीर अंतर्राष्ट्रीय समस्या पर विचार करने में संलग्न हों, वह बीच-बीच में विनोद की गहरी चुटकी लेने से नहीं चूकते थे। स्वयं उन्होंने एक बार कहा था : "यदि मुझमें विनोद की वृत्ति न होती, तो मैं पागल हो गया होता।"

वह बच्चों के साथ बच्चे बन जाते थे। मैं जब उनकी याद करता हूँ, तो मेरी आँखों में जुहू-तट पर एक नन्हे बच्चे के संग 'छिया छी' खेलते बापू का चित्र तैरने लगता है। अपनी यूरोप-यात्रा के दिनों वे अंग्रेज बच्चों से कुछ इस कदर घुल-मिल गये थे कि छोटे-छोटे बच्चे उन्हें दूर से ही देखकर 'गांधी काका', 'गांधी काका' कहकर चिल्लाने लगते थे।

बात है उसी यूरोप-यात्रा के दिनों की। एक दिन एक व्यक्ति गांधीजी के पास आया और बोला : "मुझे आपके साथ लड़ना है।"

गांधीजी ने हँसते हुए पूछा : "क्यों लड़ना है भाई ?"

वह मुस्कराते हुए बोला : "देखिये न, मेरी चार वर्ष की बच्ची जेन रोज बड़े सबेरे आकर मुझे मारती और जगाती है और कहती है, अब आप मुझे इसके बदले में मारना नहीं। क्योंकि मि० गांधी ने हमें उस दिन कहा था कि यदि तुम्हें कोई मारे, तो तुम्हें उसके बदले में मारना नहीं चाहिए।"

सुनते ही अहिंसा का वह सेनानी अपनी अहिंसा की इस परिभाषा पर मुक्त-कंठ से हँसे बिना नहीं रहा था।

एक बार बापू जब पूना से बम्बई जा रहे थे, रास्ते में एक स्टेशन पर अपार जन-समूह के साथ वर्षा में भींगते हुए दो चौदह वर्ष के बालक रेल की खिड़की के पास आकर चिल्लाने लगे : "गांधीजी, गांधीजी।"

उनके साथ ही यात्रा करते लुई फिशर ने पूछा : "आप इनके ही कौन हैं ?"

गांधीजी ने अपनी गंजी खोपड़ी के सिर पर दो अँगुलियाँ खड़ी करते हुए कहा : "सींग। मैं एक ऐसा आदमी हूँ, जिसके सिर पर सींग हों। एक दर्शनीय वस्तु।"

और एक मधुर मुस्कान फैल गयी थी।

एक बार एशियाई कान्फ्रेन्स में आये कुछ तिब्बती प्रतिनिधियों ने बापू को जब एक मलमल की बुनी पट्टी भेंट की, तो उन्होंने पूछा : "यह कहाँ बनी है ?"

वे बोले : "चीन में।"

पूछा : "अच्छा, चीन में बुनी गयी है कि सूत भी वहीं कता है ?"

एक ने कहा : "बापू, सूत भी वहीं कता है।"

इस पर मुस्कराते हुए बापू ने कहा था : "चीन की वह कौन-सी लड़की है, जो इतना महीन कातती है। उसे ढूँढ़ लाओ। अब तो मेरी उम्र शादी की नहीं है। फिर भी इतना बारीक कातनेवाली से तो शादी कर ही लूँगा।"

और सब खिलखिलाकर हँस पड़े थे।

एक बार बापू जब शांति-निकेतन गये, तो वहाँ का वर्णन करते हुए श्री जी० रामचंद्रन ने लिखा है : बापू जब कवि की कुटी पर पहुँचे, तो शान्ति-निकेतन की रीति के अनुसार प्राचीन वैदिक पद्धति से गुरुदेव उनके भाल पर चंदन और कुंकुम का टीका लगाकर उनसे गले मिले तथा वह स्वयं बापू को अपने साथ लेकर उनके लिए नियत किये गये कमरे में ठहराने के लिए ले गये। बापू ने ज्यों ही उस कमरे की देहलीज लाँघी, उसकी सजावट देखकर ठहाके पर ठहाका लगाकर हँसते हुए कहा : "यह सब क्या है ? आखिर मुझे इस सुहाग कमरे में क्यों लाया गया है ?"

गुरुदेव ने भी विनोद में योग देते हुए कहा : "आप यह न भूलें कि यह एक कवि का आवास है।"

गांधीजी ने पुनः बेइख्तियार हँसते हुए पूछा : "अच्छा तो फिर वधू कहाँ है ?"

गुरुदेव ने तुरंत उत्तर दिया : "हमारे हृदयों की चिर-युवती रानी शान्ति-निकेतन आपका स्वागत करती है ।"

बापू बोल : "पर सच मानो, वह इस खोखले मुँह के बूढ़े भिखारी को मुश्किल से ही दूसरी बार आँख उठाकर देखेगी ।"

गुरुदेव ने कहा : "नहीं सो नहीं होगा । हमारी रानी ने सदा सत्य को प्यार किया है और इन सारे लम्बे वर्षों के दरमियान अचूक रूप से उसकी पूजा की है ।"

बापू ने कहा : "तब तो इस खोखले मुँह के बूढ़े आदमी के लिए यहाँ भी कुछ आशा है ।"

और सचमुच दूसरे दिन कवि जब बापू की कुटिया में आये, तो यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि वहाँ की सारी सजावट समेटकर एक ओर रख दी गयी थी तथा सुराहियों और पत्तों के तोरण-वंदनवार की जगह चरखों और फाइलों के ढेर लगे हुए थे और लड़के-लड़कियों की एक टोली सतीश बाबू से सितार की जगह हाथ के पींजन से कपास धुनना सीख रहे थे ।

गुरुदेव ने यह सब देखकर विनोद के स्वर में मजाक करते हुए कहा : "हरे-हरे, भला उस तुम्हारे कमरे का क्या हुआ ? देखता हूँ कि दुलहिन जहाँ-की-तहाँ है, पर क्या दूल्हा भाग गया है ?"

बापू ने हँसकर उनका स्वागत करते हुए कहा : "मैं तो पहले ही चेतावनी दे चुका था कि दुलहिन बिना दाँत के बूढ़े आदमी को गाँठनेवाली नहीं है ।"

कहते हैं, इन दो महापुरुषों का विनोद सुनने के लिए देवता भी स्वर्ग छोड़ धरती के नजदीक खिंच आये थे ।

बापू कठिन-से-कठिन घड़ियों में भी विनोद की गहरी चुटकी लेने से चूकते नहीं थे ।

एक बार जब वह अपनी कलकत्ता-यात्रा के दिनों साम्प्रदायिक उपद्रवों की शांति के लिए उपवास कर रहे थे, उनसे मिलने के लिए एक दिन शरदबाबू आये और उनके लिए चाय मँगायी गयी। वह बहुत कड़क चाय पीते थे। उसे देखकर मुस्कराते हुए बापू ने कहा था : "मैं तो ऐसी चाय फेंक दूँ। मगर शायद 'कड़क' चाय कमजोर आदमी से बेहतर है।"

आज भी इन शब्दों में कितना बड़ा सत्य, कितनी गहरी वेदना छिपी हुई है।

बापू और उनके हस्ताक्षर　　　　　: १४ :

किसी भी महापुरुष के हस्ताक्षरों में उनसे मिलने के क्षणों की अमूल्य स्मृतियाँ सुरक्षित रहती हैं। हस्ताक्षरों के संबंध में मुन्शी अजमेरीजी ने अत्यंत ही सुन्दर बात कही थी। एक बार जब उन्होंने अपनी कुछ रचनाएँ सुनाकर बापू को प्रसन्न किया और उस पर बापू के हस्ताक्षरों से युक्त सम्मति चाही, तो बापू ने पूछा : "उसे लेकर आप क्या कीजियेगा ?"

इस पर अजमेरीजी ने कहा था :

"बापू, मैं तो कृतकृत्य हो चुका। अब यह इसलिए कि जिससे हमारी सन्तान यह कहकर गौरव अनुभव कर सके कि हमारे काकाजी, हमारे दादाजी गांधीजी से मिले थे। क्या तुम झूठ समझते हो, देखो हमारे पास सनद है। यह खास महात्माजी का लिखा हुआ है—तो मेरा वंशभर कृतार्थ हो जायगा।"

गांधीजी का यह नियम था कि वे अपने हस्ताक्षरों की एवज में हरिजनों के लिए ५) का दान लिया करते थे।

एक बार जब एक विद्यार्थी ने उनसे इस नियम के बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा था : "वैसे तो मैं हरिजनों के लिए ५) लेता हूँ, लेकिन अच्छे लड़के १०) भी देते हैं।"

भला बापू की दृष्टि में कौन अच्छा लड़का कहलाना पसंद नहीं करेगा। और यों बापू ने उससे सहज ही में हरिजनों के लिए दस रुपयों का दान प्राप्त कर लिया।

इसी तरह महादेवभाई ने लिखा है कि एक बार जब एक तमिलनाड़ के युवक ने गांधीजी के हस्ताक्षरों की माँग की, तो उन्होंने देवनागरी में अपने हस्ताक्षर बना दिये। इस पर उस युवक ने विनीत भाव से कहा : "बापू, तमिल में भी अपने हस्ताक्षर दीजिये न ?"

गांधीजी बोले : "मैं प्रयत्न करके देखूँगा, लेकिन उसके तुम्हें दूसरे ५) देने होंगे।"

नवयुवक ने हँसते हुए कहा : "मैं १०) दे चुका हूँ महात्माजी !"

और गांधीजी ने सिर खुजलाते हुए अपने नाम के अक्षर तमिल में लिख दिये।

उन्हें देखते ही नवयुवक बहुत खुश हुआ और बोला : "इसमें एक भी भूल नहीं है। महात्माजी, आपकी स्मरण-शक्ति अद्भुत है।" और उसने दूसरी बार के हस्ताक्षर के १०) और दे दिये।

इस पर मुस्कराते हुए गांधीजी ने कहा : "लेकिन स्मरण-शक्ति के मेरे इस प्रयोग के लिए मुझे कुछ नहीं दोगे ? मैं अच्छी तरह पास हुआ हूँ, इसका कुछ इनाम भी तो तुम्हें मुझे देना चाहिए।"

और उसकी जेब से तीसरा नोट भी निकलकर बापू के पास पहुँच गया।

गांधीजी बहुत ही खुश होकर बोले : "कुछ ही मिनटों के अन्दर तुमने हरिजनों के लिए तीस रुपये दिये हैं। वे तुम्हें आशीर्वाद देंगे।"

इसी तरह एक बार बम्बई में प्रार्थना-सभा के बाद कुछ युवकों ने गांधीजी को घेर लिया और हस्ताक्षरों की माँग की। भीड़ बढ़ती गयी और बापू अपने नियमानुसार हरिजनों के लिए दान लेते हुए हस्ताक्षर बनाते गये। इसी बीच एक करोड़पति व्यापारी ने भी सस्ते में हस्ताक्षर पाने के लिए भीड़ में से अपनी नोटबुक आगे बढ़ा दी।

बापू की तेज निगाहों से भला वह कैसे बच सकता था !

उन्होंने फौरन् नोटबुक रोक ली और उनसे अधिक रकम की माँग की ।

वे सौ तक पहुँचे । बापू ने उनका हाथ पकड़ लिया और मुस्कराते हुए मूल्य बढ़ने लगा । बात सौ से पाँच सौ, छह सौ और अन्त में सात सौ पर जाकर समाप्त हुई ।

कहते हैं, इन दोनों बनियों की लड़ाई को देखने के लिए स्वर्ग से देवता भी उतर आये ।

मैं उन क्षणों को भूल नहीं पाऊँगा, जब मैंने सेवाग्राम पहुँचकर बापू के हस्ताक्षर प्राप्त किये थे । शाम का समय था और प्रभु के आशीर्वादों की तरह रिम-झिम रिम-झिम मेह बरस रहा था । बापू अपने नित्य-नियमानुसार बाहर घूमने न जा सकने के कारण अपने बरामदे में तेजी से टहल रहे थे ।

जब मैंने नजदीक पहुँचकर उनके चरणों में प्रणाम किया तो लगा, जैसे राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद—सबको एक साथ पा लिया हो ।

मैं न जाने कब तक उनके ध्यान में डूबा रहता कि उन्होंने शांत गंभीर हिमालय की तरह पूछा :

"कहाँ से आये हो भाई ?"

मैंने कहा : "इटारसी से !"

उन्होंने मेरी नोटबुक को उलट-पुलटकर देखते हुए पूछा : "इस पर तो कालमुखी (खंडवा) लिखा है ।"

मैंने कहा : "मैं उसी गाँव का रहनेवाला हूँ ।"

बोले : "अच्छा-अच्छा, समझा ।" और उन्होंने मेरी नोटबुक पर अपने हस्ताक्षर बना दिये—'मो० क० गांधी ।'

आज भी जब मैं उन्हें देखता हूँ, तो मेरी गीली आँखों में गांधीजी का चित्र छा जाता है । और राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद—उनसे नजर आते हैं ।

गांधीजी का जीवन एक खुली पुस्तक है। उसे समझाने की आवश्यकता नहीं। वह तो उस प्राकृतिक निर्झर की तरह है, जिससे निर्मल, स्वास्थ्यप्रद जल निरन्तर प्रवाहित होता रहता है और जिससे उस राह का प्रत्येक पथिक समानरूपेण अपनी शक्तिभर लाभ उठा सकता है। वह 'कर्म का स्रोत' है। उसमें पास रखने या गाँठ बाँधने जैसी कोई चीज नहीं है। वह तो हृदयंगम करने—जीवन में उतारने—की वस्तु है।

गांधीजी को समझना पर्वत की यात्रा करने की तरह है। उसमें यात्री कहीं चढ़ता है, कहीं उतरता है; लेकिन उसका हर कदम उसे ऊँचे-से-ऊँचे ले जाने की ओर ही होता है।

आइये, हम गांधीजी के मूल जीवन-सिद्धान्तों का उन्हीके शब्दों में रसास्वादन करें।

सबसे पहले उनके जीवन के लक्ष्य को यदि हम जान लें, तो और सब बातें समझने में हमें आसानी होगी। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं :

"जो बात मुझे करनी है, आज तीस साल से जिसके लिए मैं उद्योग कर रहा हूँ, वह तो है—आत्म-दर्शन, ईश्वर का साक्षात्कार, मोक्ष। मेरे जीवन की प्रत्येक क्रिया इसी दृष्टि से होती है। मैं जो कुछ लिखता हूँ, वह भी इसी उद्देश्य से और राजनैतिक क्षेत्र में जो कूदा, सो भी इस बात को सामने रखकर।"

लेकिन फिर भी उनका मार्ग जटाधारी साधु-सन्तों की तरह आत्म-दर्शन की प्यास में दुनिया से दूर भाग जाने का नहीं था। वे तो मनुष्यों के बीच ईश्वर का दर्शन करते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :

"इन ग्रामीणों की सेवा द्वारा मैं अपने-आपको पाना, आत्मसाक्षात्कार करना चाहता हूँ। मनुष्य के अन्तिम उद्देश्य—ईश्वरानुभूति को ध्यान में रखकर ही सम्पादित होना चाहिए। इसलिए मानव-जाति की निकटतम

सेवा इस प्रयत्न का एक अनिवार्य भाग है; क्योंकि ईश्वर को पाने का एकमात्र उपाय है—उसकी बनायी सृष्टि में परमात्मा का दर्शन करना और उससे तादात्म्य प्राप्त कर लेना। यह तो सबकी सेवा द्वारा ही हो सकता है। स्वदेश-सेवा के बगैर विश्व-सेवा हो ही नहीं सकती। मैं इस विश्व का एक छोटा-सा अंशमात्र हूँ। इसलिए मैं इस मानव-जाति को छोड़कर उसे कहीं पा ही नहीं सकता। मेरे देश-भाई मेरे सबसे नजदीकी पड़ोसी हैं। वे इतने असहाय, इतने साधनहीन, इतने सुस्त और जड़ हो गये हैं कि उन्हींकी सेवा में मुझे अपना सारा ध्यान और शक्ति लगा देनी पड़ेगी। अगर मुझे यह विश्वास हो जाता कि मैं हिमालय की किसी गुफा में ईश्वर को पा सकता हूँ, तो मैं तुरन्त वहाँ चल देता। पर मैं तो जानता हूँ कि मैं इस मनुष्य-जाति को छोड़कर उसे और कहीं नहीं पा सकता।''

जैसा कि इतिहास में देखने को मिलता है, सन्त और राजनीतिज्ञ, दो अलग-अलग श्रेणियाँ रही हैं; लेकिन गांधीजी ने अपने जीवन में दोनों का अद्भुत समन्वय साधा। वे एक साथ ही 'सन्त और सेनानी' रहे। वे कहते हैं : ''सारी मनुष्य-जाति के साथ आत्मीयता कायम किये बगैर मेरी धर्म-भावना संतुष्ट नहीं हो सकती। और यह तभी सम्भव है, जब कि राजनैतिक मामलों में मैं भाग लूँ, क्योंकि आज की दुनिया में मनुष्यों की प्रवृत्ति एक ओर अविभाज्य है। उसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और शुद्ध धार्मिक ऐसे जुदा-जुदा भाग नहीं किये जा सकते। 'मानव-हित' की प्रवृत्ति से भिन्न 'धर्म' मैं नहीं जानता। ऐसी धर्म-भावना से रहित दूसरी तमाम प्रवृत्तियाँ नैतिक आधार-विहीन हैं और जीवन को खाली अर्थहीन धाँधलीबाजी तथा हल्ले-गुल्लेवाला कर डालती हैं।''

पवित्र लक्ष्य के लिए साधन भी पवित्र ही चाहिए। जिस तरह झूठ से सच को नहीं पाया जा सकता, उसी तरह असत्य और हिंसा से वास्तविक आजादी नहीं पायी जा सकती और न व्यक्ति, राष्ट्र और विश्व की सेवा की जा सकती है।

इसीलिए वे लिखते हैं : ''मेरे लिए सत्य से परे कोई धर्म नहीं है और

अहिंसा से बढ़कर कोई परम कर्तव्य नहीं है। इसके मानी हैं, सत्य से बढ़कर कोई ध्येय नहीं और अहिंसा से बढ़कर कोई कर्तव्य नहीं। इस कर्तव्य को करते-करते ही आदमी सत्य की पूजा कर सकता है।"

कुछ लोगों का ख्याल है कि सत्य और अहिंसा नैतिक सिद्धांत हैं। इसलिए व्यावहारिक जीवन में ये समान रूप से लागू नहीं होते। इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है :

"आज कहा जाता है कि सत्य अखबार में नहीं चलता। राजकारणों में नहीं चलता, तो फिर वह चलता कहाँ है ? अगर सत्य जीवन के सभी क्षेत्रों और सभी व्यवहारों में नहीं चल सकता, तो वह कौड़ी कीमत की चीज नहीं है। जीवन में उसका उपयोग ही क्या रहा ? मैं तो जीवन के हरएक व्यवहार में उसके उपयोग का नित्य नया दर्शन पाता हूँ। पचास वर्ष से अधिक से जो साधना कर रहा हूँ, उसी साधना का अनुभव अंशतः आप लोगों के सामने रखता जाता हूँ। आप भी उसका दर्शन कर सकते हैं।

"उसी तरह मैंने जीवन के हरएक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग किया है। घर में, संस्थाओं में, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में, एक भी ऐसे मौके का मुझे स्मरण नहीं है कि जहाँ अहिंसा निष्फल हुई हो। जहाँ पर कभी निष्फलता-सी देखने में आयी, मैंने उसका कारण अपनी अपूर्णता को समझा है। मैंने अपने लिए भी संपूर्णता का दावा नहीं किया है, मगर मैं यह दावा करता हूँ कि मुझे 'सत्य' की, जिसका दूसरा नाम 'ईश्वर' है, शोध की लगन लगी रहती है। इस शोध के सिलसिले में 'अहिंसा' मेरे हाथ आयी। इसका प्रचार मेरे जीवन का उद्देश्य है। मुझे अगर जिन्दा रहने में कोई रस है, तो वह सिर्फ इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए ही है।"

इसी संबंध में आगे चलकर वे लिखते हैं : "सत्य और अहिंसा पर मेरी जो श्रद्धा है, वह नित्य बढ़ती ही जा रही है और अपने जीवन में

जैसे-जैसे मैं उनका अनुसरण करने का प्रयत्न कर रहा हूँ, मैं भी प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा हूँ। उनके विषय में नित्य नये-नये अनुमान सामने आते हैं, उनमें नित्य नया प्रकाश देखता हूँ और रोज नया अर्थ दिखाई देता है। यही कारण है कि 'चरखा-संघ', 'हरिजन-सेवक-संघ' और 'ग्रामोद्धार संघ' के सामने मैं बराबर नये-नये विचार रखता आ रहा हूँ। इसका यह अर्थ नहीं कि मेरा दिमाग स्थिर नहीं है या मेरी बुद्धि डगमगा रही है। इसका अर्थ तो यह है कि वे जीवित संस्थाएँ हैं। अतः वृक्ष की तरह उन्हें भी बढ़ना ही चाहिए। मैं चाहता हूँ कि आप भी मेरे साथ रोज विकास की ओर अग्रसर हों।"

अहिंसा के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत ही सुन्दर विचार व्यक्त किये हैं : "मैं तो अहिंसा का कलाकार हूँ, ऐसा मेरा दावा है। मैं सत्य और अहिंसा को संगठित रूप देना ही अपने जीवन का परम धर्म मानता हूँ। मेरी अहिंसा एक वैज्ञानिक प्रयोग है। वैज्ञानिक प्रयोग में निष्फलता जैसी वस्तु के लिए स्थान नहीं। अवश्य ही मैं मरूँगा, तब भी मेरी जबान पर अहिंसा ही होगी। मेरी अहिंसा सारे जगत् के प्रति प्रेम माँगती है। मुझमें जो कुछ शक्ति है, वह अहिंसा की ही शक्ति है। अहिंसा मेरे लिए जिन्दगी का सौदा है। बिना इसके मेरी जिन्दगी चल नहीं सकती।"

गांधीजी की एक और विशेषता थी। वे किसी भी काम को छोटा नहीं समझते थे, बल्कि कर्ममात्र में उनका विश्वास था और उसमें वे अपने महान् लक्ष्य की सफलता का दर्शन करते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है : "मेरे प्रभु के रूप सहस्रों हैं। कभी मैं उनका दर्शन चरखे में करता हूँ, कभी हिन्दू-मुसलिम एकता में और कभी अस्पृश्यता-निवारण में। मुझे मेरी भावना जिस रूप की ओर खींच ले जाती है, उसीकी ओर चला जाता हूँ और वहीं अपने प्रभु के साथ सान्निध्य कर लेता हूँ। गीता में भगवान् ने कहा है कि जो मेरी उपासना करता है, उसका मैं योगक्षेम चलाता हूँ।"

इसी संबंध में दूसरी जगह वे लिखते हैं : "चरखे के द्वारा मैं दरिद्र-

नारायण का अनुसंधान करता हूँ और ईश्वर का साक्षात्कार करता हूँ। मेरी बुद्धि का विकास उसके द्वारा होता है और आजन्म होता रहेगा।

"चरखे में श्रद्धा रखनेवाला मैं अकेला ही क्यों न रह जाऊँ, उसकी सेवा में मैं मर जाऊँ, तो मुझे अभिमान होगा। चरखा चलाते-चलाते या हरिजन-सेवा करते-करते अगर मर जाऊँ, तो मुझे जो अभिमान होगा, वह क्षन्तव्य भी होगा। आखिर किसी-न-किसी साधन द्वारा हमें ईश्वर के साथ सान्निध्य जोड़ना है, तो चरखे द्वारा क्यों न हो? चरखे ने मेरी सेवा की है या मैंने चरखे की सेवा की है, जो चाहिए कह लीजिये। अगर भक्त ईश्वर का दास है, तो ईश्वर भी भक्त का दासानुदास होता है। इस अर्थ में मैं कह रहा हूँ।"

चरखे के संबंध में अपने मत को स्पष्ट करते हुए उन्होंने आगे लिखा :

"मैं यहाँ (रामगढ़-कांग्रेस में) करोड़ों मूक लोगों का प्रतिनिधि बनकर आया हूँ और उसी हैसियत से लड़ूँगा; क्योंकि मैं उन्हींके लिए जीता हूँ और उन्हींके लिए मरना भी चाहता हूँ। उनके प्रति मेरी वफादारी और सब वफादारियों से बड़ी है और आप मुझे मार डालें या छोड़ दें, तो भी मैं चरखा नहीं छोड़ूँगा। इसके कारण भी वे ही हैं। मैं जानता हूँ कि मैंने चरखा-संबंधी शर्तें ढीली कर दीं, तो जिन करोड़ों बे-जबानों के लिए मुझे ईश्वर को जवाब देना है, उन पर तबाही आ जायगी। इसलिए अगर आपका चरखे में उसी अर्थ में विश्वास न हो, जिसमें मुझे है, तो दया करके मुझे छोड़ दीजिये। चरखा सत्य और अहिंसा की बाहरी निशानी है।"

गांधीजी किसी एक जाति या देश के नहीं, वरन् 'सर्व-धर्म-समन्वय' और 'सर्वोदय' के उपासक थे। वे कहते हैं : "मैं एक सनातनी हिन्दू होने का दावा करता हूँ और चूँकि हिन्दू मजहब और दूसरे सब मजहबों का निचोड़ मजहबी रवादारी या धार्मिक सहिष्णुता है, इसलिए मेरा दावा है कि मैं एक उच्च हिन्दू हूँ. तो साथ-साथ एक अच्छा मुसलमान और एक अच्छा ईसाई भी हूँ।

"अगर यह दुनिया एक न होती, तो मैं उसमें रहना न चाहूँगा, अलबत्ता अपने जीते-जी मैं इस सपने को सच करना चाहूँगा।"

गांधीजी, अगर एक शब्द में कहें तो 'कर्तव्यनिष्ठ ऋषि' थे। उनके जैसे सतत जागरूक और अनासक्त कर्म करनेवाले विरले ही मिलेंगे। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं :

"कर्म के अटल सिद्धान्तों को मैं मानता हूँ। मैं बहुत-सी वस्तुओं के लिए प्रयत्न करता हूँ। अधिकाधिक कर्मों का संचय करने के लिए कठिन प्रयास में मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण बीतता है। अतः यह कहना गलत है कि मेरे संचित कर्म अच्छे हैं, इसलिए आज मेरा सब अच्छा ही होता है। संचित तो देखते-देखते खतम हो जायँगे, अतः अपनी प्रार्थना के बल पर भावी शुद्ध कर्मों की रचना करनी है।

"मुझे याद नहीं आता कि कभी सम्मान की भूख मुझे लगी हो, किन्तु काम की भूख अवश्य है। सम्मान देनेवालों से काम लेने के लिए मैं फड़फड़ाता हूँ और जिन्होंने काम नहीं दिया, उनके सम्मान से दूर भागता हूँ। मुझे जहाँ पहुँचना है, वहाँ जब मैं पहुँचूँगा, तभी कृतार्थ होऊँगा।"

इतना सब कुछ करने के बाद भी उन्होंने अपने पीछे कोई मत या वाद नहीं लगाया, बल्कि अपने सिद्धान्तों को अनुयायियों द्वारा 'गांधीवाद' के नाम से पुकारे जाने पर उसका एतराज करते हुए उन्होंने कहा :

"गांधीवाद जैसी कोई चीज मेरे दिमाग में नहीं है। मैं कोई सम्प्रदाय-प्रवर्तक नहीं हूँ। तत्त्वज्ञानी होने का तो मैंने कभी दावा नहीं किया है। मेरा यह प्रयत्न भी नहीं है। कई लोगों ने मुझसे कहा कि तुम गांधी-विचार की एक स्मृति लिखो। मैंने कहा : स्मृतिकार कहाँ और मैं कहाँ? मेरे पास कोई योजना नहीं है। स्मृति बनाने का मेरा अधिकार नहीं है। जो होगा, मेरी मृत्यु के बाद होगा। मैंने तो केवल बगैर योजना के अपने निजी ढंग से यही प्रयत्न किया कि हम अपने नित्य जीवन में सत्य, अहिंसा आदि सनातन तत्त्वों का व्यापक प्रयोग करें। बालक की तरह जैसी प्रेरणा मिली, प्रवाह में जो चीजें आ गयीं, उसमें जो सूझा, वह किया।"

अपने सम्बन्ध में वे लिखते हैं :

"मैंने अपने दिल को सख्त नहीं बनाया है। मैंने सिवा उस अर्थ में, जिसमें कि सभी मानव-प्राणी उसके सन्देश-वाहक हैं, कभी यह दावा नहीं किया कि मैं परमात्मा का सन्देश-वाहक हूँ। मैं भी एक मरणशील मनुष्य हूँ और किसी दूसरे आदमी की तरह गलती कर सकता हूँ। मैंने कभी गुरु होने का भी दावा नहीं किया, लेकिन मैं प्रशंसकों को ठीक उसी तरह गुरु या महात्मा कहने से नहीं रोक सकता, जिस तरह मैं अपने निन्दकों को सब तरह की गालियाँ देने और मुँह पर ऐसी-ऐसी बुराइयाँ थोपने से नहीं रोक सकता, जो मुझमें कतई नहीं हैं। मैं तो स्तुति और निन्दा दोनों को ही सर्वशक्तिमान् परमात्मा के चरणों में रखकर अपने मार्ग पर बढ़ा चला जाता हूँ।"

अपने-आपको ईश्वर का अवतार या महात्मा कहाये जाने का भी उन्होंने सदा विरोध किया था और सदा ही यह कहा : "मैं तो एक साधारण आदमी हूँ। सिर्फ फर्क इतना है कि मैंने अपनी आत्मा को ऊँचा उठाने की ओर प्रयत्न किया है, जैसा कि चाहें तो सब कर सकते हैं।

"जैसा कि कहा जाता है, मैं कोई अवतारी पुरुष नहीं हूँ, मैं तो खुदा का एक बन्दा हूँ और छोटे-से-छोटे मर्द या औरत से भी अपने को छोटा मानता हूँ। मेरा हमेशा यह ख्याल रहा है कि मैं मुसलमानों को ज्यादा अच्छा मुसलमान, हिन्दुओं को ज्यादा अच्छा हिन्दू, ईसाइयों को ज्यादा अच्छा ईसाई और पारसियों को ज्यादा अच्छा पारसी बनाऊँ।

"मुझे आज का बुद्ध कहकर मुझ पर झूठा आरोप लगाया जाता है। मैं एक मामूली आदमी हूँ। मैं हिन्दुओं और मुसलमानों का या हिन्दुस्तान की सारी जाति का एक-सा सेवक हूँ।"

अपने लिए सबसे अधिक प्रचलित 'महात्मा' शब्द के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा :

"मैंने कभी स्वप्न में भी ख्याल नहीं किया कि मैं महात्मा हूँ और

दूसरे लोग अल्पात्मा हैं । प्रभु के सामने सब बराबर हैं । हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सब एक ही ईश्वर के भक्त हैं ।"

अन्त में अपने विचारों के सम्बन्ध में वे लिखते हैं : "मैंने जो कुछ लिखा है वह मैंने जो कुछ किया है, उसका वर्णन है । मैंने जो कुछ किया है, वही सत्य और अहिंसा की सबसे बड़ी टीका है ! उनमें जिनको विश्वास है, उनका (सिद्धान्तों का) प्रचार केवल तदनुसार आचरण करके ही कर सकते हैं ।"

आज बापूजी हमारे बीच नहीं हैं; लेकिन उनके विचार, कार्य और संदेश तो हैं ही और वे चिरकाल तक हमारा मार्ग-दर्शन करते रहेंगे ।

हमारे युग का मसीहा : १६ :

जब मैं गांधीजी के सान्ध्य-प्रार्थना में दिये गये प्रवचनों की याद करता हूँ, तो मुझे भगवान् बुद्ध और ईसा के प्रवचनों की याद हो आती है । राम, कृष्ण, बुद्ध, मुहम्मद और ईसा ने भी तो एक दिन इसी तरह इसी धरित्री पर अवतीर्ण होकर, बिना किसी भेद-भाव के अखिल मानवता को ईश्वरीय संदेश सुनाया था । आज वे उपदेश भले ही रामायण, गीता, त्रिपिटक, कुरान या बाइबिल के रूप में हमारे विश्वमान्य धर्मग्रंथ बन चुके हों, लेकिन एक दिन उनके प्रणेताओं को उन्हें सुनाने के लिए अपने ही लोगों द्वारा जो कष्ट दिये गये, वे किसीसे छिपे नहीं हैं । अपने आदर्श की रक्षा के लिए जंगलों की खाक तक छाननेवाले भगवान् राम को एक धोबी के कारण अपने सर्वस्व का उत्सर्ग करना पड़ा । गीता के रचयिता को महाभयंकर महाभारत-काल में से होकर गुजरना पड़ा और अंत में वह एक व्याध के बाण के शिकार हुए । भगवान् बुद्ध और मुहम्मद को अपने प्रवचनों की खातिर दर-दर ठोकरें खानी पड़ीं और उपेक्षित

होना पड़ा और ईसा का सूली पर चढ़ाया जाना तो धर्मान्धता का ज्वलंत उदाहरण है ।

इन घटनाओं के साथ जब हम गांधीजी की शांति-सभाओं और प्रार्थना-प्रवचनों में, स्वयं हिन्दुओं द्वारा विघ्न डालने एवं विरोध करने एवं अंत में इसीलिए उन्हें गोली से मार दिये जाने की बात पर विचार करते हैं, तो लगता है कि शताब्दियों के बाद भी हमने अपने धर्मानुयायी होने की कीमत महापुरुष को मारकर चुकायी, जब कि महापुरुष स्वयं अपने प्राणों को होम कर भी धर्म के वृक्ष को सींचते आये हैं ।

संसार के इतिहास में आज तक इतनी निर्दोष हत्या नहीं हुई है, यद्यपि संसार का इतिहास अनेक हत्याओं और हिंसा से भरा है । हत्याएँ राजाओं और महापुरुषों की भी हुई हैं, लेकिन जिसे न राज्य की इच्छा थी, न स्वर्ग की इच्छा थी; बल्कि मनुष्यमात्र का दुःख दूर हो, इसके लिए जो दिन-रात प्रयत्नशील थे और मनुष्यमात्र के कल्याण के लिए जो प्रार्थना करने जा रहे थे, ऐसे व्यक्ति की प्रार्थना-स्थल पर हत्या कर डालना मानव-जाति पर एक अमिट कलंक है । जब तक धरती रहेगी, गांधी का नाम रहेगा और जब तक गांधी का नाम रहेगा, उसकी हत्या का अमिट कलंक मनुष्य-जाति पर लगा रहेगा ।

आइये, अब देखें कि आखिर वह कौन-सी प्रार्थना है, जिसे करने के लिए एक महापुरुष को अपने प्राणों की बलि देनी पड़ी ।

एक शब्द में कहें, तो गांधीजी की प्रार्थना का अर्थ है : "सब धर्मों की सचाइयों और अच्छाइयों का समन्वय और उसके जरिये मनुष्यमात्र के कल्याण का सतत अनवरत प्रयत्न ।" उसका स्वरूप है, वेद और उपनिषदों के मंत्र । गीता का पाठ, बुद्ध के सूत्रवाक्य, कुरान की आयतें, जरुत्सीगाथा, हरे राम की धुन और अंत में किसी भी भाषा के संत के भजनों का सादर सस्वर गायन और फिर प्रवचन ।

अपनी प्रार्थना के सम्बन्ध में स्वयं एक बार गांधीजी ने कहा था : "मुझे रोटी न मिले, तो मैं जी सकता हूँ, लेकिन बिना प्रार्थना के तो मैं

पागल हो जाऊँ। शरीर के लिए भोजन जितना आवश्यक है, आत्मा के लिए प्रार्थना उससे अधिक आवश्यक है।''

अपनी प्रार्थना में सब धर्मों की अच्छाइयों का समन्वय करने के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है : ''जितना सच्चा मेरा धर्म मेरे लिए है, उतने ही सच्चे दुनिया के तमाम महान् धर्म उन धर्मों के अनुयायियों के लिए हैं।

''जितना संभव था, उतना विविध धर्मों का अध्ययन करने के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि सब धर्मों का एकीकरण करना,—यदि उचित और आवश्यक है तो, उन सबकी एक महान् चाबी होना चाहिए। यह चाबी सत्य और अहिंसा है। इस चाबी से जब मैं किसी धर्म की पेटी खोलता हूँ, तो मुझे धर्म का ऐक्य दूसरे धर्मों के साथ करने में जरा भी कठिनाई नहीं आती, यद्यपि वृक्षों के पत्तों की तरह सब धर्म अलग-अलग नजर आते हैं। अगर जड़ से देखा जाय, तो सब धर्म एक ही दिखाई देते हैं।

''विभिन्न धर्मों की सहकारिता तभी स्थापित हो सकती है; जब कि विभिन्न धर्मों के अनुयायी एक-दूसरे के धर्म के प्रति क्रियात्मक रूप से सम्मान का भाव प्रकट करें।''

गांधीजी निरे सैद्धांतिक आचार्य ही नहीं थे, वरन् अपने प्रत्येक विचार को जीवन में उतारकर उन्होंने उसे सक्रिय स्वरूप भी दिया है। उनकी प्रार्थना सर्व-धर्म-समन्वय का एक नम्र प्रतीक है।

एक बार दिल्ली में एक हिंदूसभाई द्वारा प्रार्थना में कुरान की आयत पढ़े जाने का विरोध करते हुए जब गांधीजी को प्रार्थना करने से रोका गया, तो उन्होंने कहा था : ''मैं एक सच्चा सनातनी हिन्दू हूँ। मेरा हिन्दू-धर्म बताता है कि मैं हिन्दू-प्रार्थना के साथ-साथ इसलाम-प्रार्थना भी करूँ, पारसी-प्रार्थना भी करूँ तथा ईसाई-प्रार्थना भी करूँ। सभी प्रार्थना करने में मेरा हिन्दूपन है, क्योंकि वही अच्छा हिन्दू है, जो अच्छा मुसलमान भी है और अच्छा पारसी भी है।''

ठीक यही बात उन्होंने अपने नोआखाली के दौरे के समय मुसलमानों के बीच भी कही थी। उन्होंने कहा : "मैं कई जगह मुसलमानों के घर में ठहरता हूँ। वहाँ बड़े आराम से और बिना संकोच के नियमित प्रार्थना करता हूँ और वहाँ नोआखाली में जब घूम रहा था, एक बार तो मस्जिद के अहाते में ही, मस्जिद के अन्दर के मकान में भी मैंने प्रार्थना की है। मैं वहाँ के मुसलमान भाइयों से कहता था कि जैसे आप रहीम का नाम लेते हैं, वैसे ही यहाँ मैं राम का नाम लूँगा। रहीम का नाम जो लेते हैं, उन्हें राम का नाम लेनेवालों को रोकना नहीं चाहिए। और उन्होंने मुझे 'राम-नाम' लेने से रोका नहीं था।"

एक दिन एक धर्मान्ध हिन्दू ने हिन्दू-धर्म की जय कहकर गांधीजी को प्रार्थना करने से रोका, इस पर अत्यन्त दुःखित होकर गांधीजी ने कहा था :

"उसने जो कहा 'हिन्दू-धर्म की जय' सो धर्म की जय इस तरह नहीं हो सकती। उसे समझना चाहिए कि इस तरह धर्म डूब रहा है। दूसरों को प्रार्थना न करने देने से धर्म-रक्षा कैसे हो जायगी ? हमें यह याद रखना है कि धर्म का पालन जोर-जबर्दस्ती से नहीं हो सकता। धर्म का पालन करने के लिए मरना होगा। संसार में ऐसा कोई धर्म पैदा नहीं हुआ, जिसमें मरना न पड़ा हो। मरने का इल्म सीखने के बाद ही धर्म में ताकत पैदा होती है। धर्म के वृक्ष को मरनेवाले ही सींचते हैं। धर्म उन लोगों के कारण बढ़ता है, जो ईश्वर का नाम लेते हैं, ईश्वर का काम करते हैं, ईश्वर का स्तवन करते हैं। ईश्वर से यह आरजू करते हैं कि 'हे प्रभो ! हमें रास्ता नहीं दीखता, तू ही दिखा।' तब लोग कहते हैं कि वह तो भक्त है और उसके पीछे चलते हैं। धर्म इसी तरह बनता है। मारकर कोई धर्म नहीं पनपा। मरकर ही धर्म पनपा है।"

अपनी प्रार्थना में सब धर्मों को स्थान देने का विरोध करनेवालों से उन्होंने कहा : "गीता में कहा है, जो मुझे हर जगह देखता है, उसका मैं नाश नहीं करता और वह मेरा नाश नहीं करता। गोया कुरान में,

जिन्दावेस्ता में, बाइबिल में, सबमें 'राम' है। ईसाई, पारसी, सिक्ख, मुसलमान जिस गॉड को, जिस हुरमत को, जिस खुदा को भजते हैं, वह ईश्वर ही है।

"और मैं इस धर्म को माननेवाला सच्चा हिन्दू हूँ, इसलिए सच्चा मुसलमान और ईसाई भी हूँ। यह सिर्फ दिमाग की या कहने की बात नहीं है। यह हकीकत है। ईशोपनिषद् में भी ऐसा ही लिखा है कि 'मैं सब चीज में हूँ और सब मुझमें ही है।' विष्णु के सहस्र नाम हैं। ईश्वर के केवल हजार ही नाम नहीं हैं, एक लाख भी हैं। मैं तो कहता हूँ कि ईश्वर के चालीस करोड़ नाम हैं। इसलिए क्या वजह है कि मैं केवल राम ही कहूँ या रहीम ही कहूँ।"

आगे चलकर वह कहते हैं: "अगर मैं हिन्दू हूँ, तो कुरान क्यों नहीं पढ़ सकता? जिन्दावेस्ता क्यों नहीं पढ़ सकता? और हिन्दू की प्रार्थना में भी तो कम भेद नहीं हैं। कोई कहेगा, वेद नहीं उपनिषद् कहो, उपनिषद् नहीं गीता कहो, यजुर्वेद नहीं अथर्ववेद कहो यानी सभी अपने-अपने ढंग की प्रार्थना करने के हकदार हैं। जैसे अनेक नाम होने पर भी ईश्वर एक ही है, वैसे ही अनेक नाम होते हुए भी धर्म एक ही है; क्योंकि सारे धर्म ईश्वर से आये हैं। धर्म की बातें अरबी में हों, संस्कृत में हों या चीनी भाषा में हों, सब अच्छी ही है।"

अंत में उन्होंने कहा: "इतना मैं आपसे कहूँगा कि आप लौटें, तब सभी धर्मों की प्रार्थना अपने दिल में लेकर जायँ।"

आइये, हम भी उनके स्वर में स्वर मिलाकर कह दें:

'रघुपति राघव राजाराम, पतितपावन सीताराम।
ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान॥'

गांधी के जीवन का संगीत : प्रार्थना : १७ :

गांधीजी का संपूर्ण जीवन प्रार्थनामय रहा है या यों कहें कि प्रार्थना गांधीजी के जीवन का संगीत था, तो भी अत्युक्ति नहीं। चाहे वे सेवाग्राम-आश्रम के शांत वातावरण में हों या अपने दौरे के सिलसिले में कोलाहलपूर्ण सफर या जेल में हों या राजनैतिक आन्दोलन के मैदान में, स्वस्थ हों या आमरण उपवास के बीच, प्रार्थना सदैव उनके दैनिक जीवन का अभिन्न अंग रही। प्रार्थना के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है : "प्रार्थना मेरे जीवन की रक्षिका रही है। इसके बिना मैं बहुत पहले ही पागल हो गया होता। जितना अधिक मेरा ईश्वर में विश्वास बढ़ा, उतनी ही अधिक प्रार्थना के प्रति मेरी लगन बढ़ने लगी। मैंने अनुभव किया कि जिस तरह शरीर के लिए भोजन अनिवार्य है, उसी तरह आत्मा के लिए प्रार्थना अनिवार्य है। वस्तुतः भोजन शरीर के लिए उतना आवश्यक नहीं है, जितनी प्रार्थना आत्मा के लिए। क्योंकि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए भूखे रहने व उपवास करने की अक्सर आवश्यकता हो जाती है। किन्तु प्रार्थना में उपवास जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। संसार के सबसे बड़े शिक्षकों में से तीन महान् शिक्षक बुद्ध, ईसा और मुहम्मद अपना यह अकाट्य अनुभव छोड़ गये हैं कि उन्हे प्रार्थना के द्वारा प्रकाश मिला और उसके बिना जीवित रह सकना सम्भव नहीं। पास का उदाहरण लीजिये। करोड़ों हिन्दू, मुसलमान और ईसाई अपने जीवन का समाधान केवल प्रार्थना में पाते हैं।"

प्रार्थना आत्मा में परमात्मा के दर्शन करने का प्रयत्न तो है ही, साथ ही वह आत्मशुद्धि का भी एक अंग है। इसके सम्बन्ध में अपने अनुभव का जिक्र करते हुए एक जगह उन्होंने लिखा है : "अन्तर्नाद का वर्णन किया नहीं जा सकता, किन्तु कई बार हमें ऐसा मालूम होने लगता है कि अन्तर से अमुक प्रेरणा हुई है। मैंने जब यह नाम पहचानना सीखा, वह

मेरा प्रार्थना-काल कहा जा सकता है।" इसी तरह आत्मशुद्धि के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है : "प्रार्थना से हम विनम्र बनते हैं। वह हमें आत्मशुद्धि की ओर ले जाती है, अन्तर-निरीक्षण करने के लिए प्रेरणा देती है। प्रार्थना तो हम अपने-आपको पाक-साफ बनाने के लिए करते हैं। ईश्वर सब कहीं है, वह विश्व के जर्रे-जर्रे में मौजूद है। आत्मशुद्धि याने अपने-आपको पाक-साफ बनाने का तरीका यह है कि हम ईश्वर की मौजूदगी को अपने अन्दर गहराई से महसूस करें। इस तरह जो ताकत हमें मिलती है, उससे बढ़कर कोई दूसरी ताकत नहीं।"

प्रार्थना के दो स्वरूप हैं : व्यक्तिगत और सामूहिक। लेकिन बापू ने सदा अपने जीवन में 'सामूहिक प्रार्थना' पर ही विशेष जोर दिया। उन्होंने कहा : "व्यक्तिगत प्रार्थना तो सब लोग करें, करनी ही चाहिए पर सामूहिक प्रार्थना के लिए भी उतना ही स्थान है। इसके बिना सामूहिक जीवन बन ही नहीं सकता। प्रार्थना के लिए आप शुद्ध हेतु से ईश्वर का नाम लेने के लिए इकट्ठा होते हैं। उससे शुद्ध और सच्ची शक्ति पैदा होती है।

"सामूहिक प्रार्थना सारी मानव-जाति को एक कुटुम्ब समझने की शक्ति देने का अच्छे-से-अच्छा साधन है। सामूहिक रामधुन और ताल उसकी बाहरी निशानी है। अगर उनका रूप सिर्फ यांत्रिक न हो, तो उससे जो ताकत और रस का वातावरण पैदा होता है, उसको शब्दों द्वारा नहीं, बल्कि अनुभव से समझा जा सकता है।" आगे चलकर वे लिखते हैं : "प्रार्थना लोगों को एक साथ रखनेवाली सबसे बड़ी ताकत है। वह इन्सानों में आपस की एकता और मेल पैदा करती है। जो आदमी प्रार्थना के जरिये ईश्वर के साथ अपनी एकता को पहचान लेता है, वह सबको अपने जैसा ही मानता है।"

जिस व्यक्ति की प्रार्थना के सम्बन्ध में ऐसी दृढ़ श्रद्धा हो, उसके दर्शनों का समय भी प्रार्थना के वक्त से अच्छा और कौन हो सकता है। सुबह पाँच बजे और शाम को सात बजे कोई भी व्यक्ति बापू की प्रार्थना

में सम्मिलित होकर उनके दर्शन ही नहीं, वरन् आत्मदर्शन भी कर सकता था। इस समय आप एक साथ ही 'राजनीतिज्ञ और संत गांधी' में मानव गांधी का सम्मिलित दर्शन कर सकते थे।

प्रार्थना के समय विशाल धरित्री के खुले प्रांगण में वर्तुलाकार रेती पर जनसाधारण और आश्रम-निवासियों के बीच एक छोटे से लकड़ी के पटिये के सहारे बैठे गांधीजी ऐसे मालूम होते थे, मानो ग्रन्थों में वर्णित वैदिक-युग के कोई ऋषि अपनी शिष्य-मंडली के साथ आसीन हों। प्रार्थना की घंटी बजते ही जब अपने-अपने कार्यों में दक्ष भिन्न-भिन्न प्रांत तथा जाति के लोग प्रार्थना-स्थल की ओर दौड़े आते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई 'महामानव' सबको अपने में मिला लेने का आह्वान कर रहा हो। मानो श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में कह रहा हो कि "हे हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, पारसी, ईसाई और अंग्रेज, तुम सब आओ। मनुष्यों का महासागर भारत तुम सबका स्वागत करता है।" और फिर रात्रि की निस्तब्धता में साथ लायी हुई लालटेनों का प्रकाश भी जब मद्धिम कर दिया जाता है, तब सचमुच ही रूप और रंग से परे मनुष्यों के उस समुदाय में अपने अधखुले बदन पर श्वेत खादी के वस्त्रों के बीच सत्य और शांति के आशीर्वाद-दाता की तरह पलथी मारे शांत, अडिग, ध्यानस्थ और स्थितप्रज्ञ बापू ऐसे लगते, मानो साक्षात् 'बुद्ध' हों।

यह प्रार्थना ही बापू का प्राण रही है। और इस प्रार्थना का स्वरूप क्या है—वेद और उपनिषद् के श्लोक, गीता के स्थितप्रज्ञ के लक्षणवाले अध्याय का कंठस्थ सस्वर पाठ, रामायण की चौपाइयों का सस्वर गायन, कुरान की आयतों और संत तुलसीदास से लगाकर रैदास व कबीरदास जैसे किसी भी भाषा के संत के एक-दो पदों का सितार पर संगीत, हरे राम की ध्वनि और अंत में 'सर्वोदय' की कामना। यह प्रार्थना क्या है, मानो सर्व-धर्म-समन्वय के जरिये विश्व-बन्धुत्व और विश्व-कल्याण का नम्र प्रयत्न। यह प्रार्थना ही बापू का जीवन थी। बापू की धमनियों में जो रक्त बह रहा था, वह इस प्रार्थना से अनुरंजित था। गांधीजी जिस

वातावरण में जी रहे थे, वह इस प्रार्थना से अनुप्राणित था। गांधीजी की मुष्टिका का लौह स्वरूप गांधीजी के मस्तिष्क की मौलिकता, गांधीजी की विचार और कार्यरूपी प्रत्येक दृष्टि प्रार्थना से उठती और प्रार्थना में समाती थी। वह उनके विचार और कर्म की सामञ्जस्य-शक्ति थी। जिस विचार और कर्म की सृष्टि के गांधीजी स्रष्टा रहे, प्रार्थना उनका प्रकाश थी। उनके पाँचों तत्त्व प्रार्थनामय रहे।

इस प्रार्थना के सम्बन्ध में स्वयं उन्होंने कहा था : "मुझे रोटी न मिले, तो मैं व्याकुल नहीं होता, पर प्रार्थना न मिले, तो मैं पागल हो जाऊँगा। मेरा सारा जीवन प्रार्थना में ही है और इसका सुख इस मार्ग में आने से ही प्राप्त किया जा सकता है।

"बुद्ध, ईसा और मुहम्मद तीनों ने प्रार्थना की सार्थकता स्वीकार की है। मैं ईश्वर का दर्शन नहीं करा सकता। ईश्वर अनुभवगम्य है, इसलिए अनुभव से जाना जा सकता है। प्रार्थना द्वारा उसका अनुभव होता है। जो अनुभव लेना चाहते हैं—जिसे शांति की आवश्यकता है, वह प्रार्थना करे।"

आइये, हम भी सर्वशक्तिमान् प्रभु से प्रार्थना करें कि हे प्रभो, इस अखिल मानवताप्रेमी सत्य, अहिंसा, शांति और स्वतंत्रता के संदेशदाता, शांतिवादी क्रांतिकारी और क्रांतिकारी युग-निर्माता, ज्ञानर्षि, कर्मावतार, विजयी सेनानी संत के प्रति हम ईमानदार साबित हो सकें।

गांधी-हृदय-मन्थन : १८ :

जिस तरह दही को बिलोने से मक्खन निकलता है, उसी तरह संघर्ष की घड़ियों में मनुष्य के हृदय से भी विचारों का नवनीत निकलता आया है। साथ में गांधीजी के हृदय-मंथन से निकले हुए कुछ ऐसे ही विचार दे रहा हूँ।

अपने आराध्य के बारे में उन्होंने कहा था : "मैं और किसी ईश्वर को नहीं, सिर्फ उसी ईश्वर को मानता हूँ, जिसका कि करोड़ों मूकों के हृदयधाम में निवास है। वे लोग ईश्वर की मौजूदगी नहीं पहचानते, मैं पहचानता हूँ। मैं उसी ईश्वर की पूजा करता हूँ, जो सत्य है या उस सत्य की, जो इन करोड़ों की सेवा के द्वारा ईश्वर है।"

ईश्वर पर अपने अडिग विश्वास के बारे में उन्होंने कहा था : "मैं आपसे इतना कहता हूँ कि जितना मुझे इस बात में विश्वास है कि आप और मैं इस कमरे में बैठे हुए हैं, इससे कहीं ज्यादा ईश्वर में विश्वास है। और मैं यह भी विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि बगैर हवा-पानी के मैं भले ही जिन्दा रह जाऊँ, पर बगैर ईश्वर के मैं जिन्दा नहीं रह सकता। आप मेरी आँखों को फोड़ दें, पर इससे मैं मर नहीं सकता; आप मेरी नाक काट डालें, पर इससे भी मैं मरूँगा नहीं। लेकिन आप ईश्वर पर से मेरा विश्वास उड़ा दें और मैं उसी क्षण मर जाऊँगा।"

कुछ और सूत्र-वाक्य लीजिये :

"ईश्वर को किसीने उसके कामों के सिवा और किसी रूप में देखा नहीं है।"

"ईश्वर के दर्शन आँख से नहीं होते। ईश्वर का शरीर नहीं है, इसलिए उसके दर्शन श्रद्धा से ही होते हैं।"

"ईश्वर की वाणी मनुष्य के कामों में ही प्रकट होती है।"

"ईश्वर सिर्फ प्यार के जरिये मिल सकता है और वह प्यार लौकिक नहीं, अलौकिक होना चाहिए।"

अपने लक्ष्य के बारे में उनका कहना था :

"करोड़ों का जीवन ही हर हालत में मेरी राजनीति है। उसे छोड़ने की हिम्मत मुझमें नहीं है। उसे छोड़ने का मतलब होगा, मेरे जीवन के काम और भगवान् को मानने से इनकार करना।"

मनुष्य में अपना अडिग विश्वास जाहिर करते हुए उन्होंने कहा था :

"जिस बात में किसी मनुष्य का कल्याण समाया हुआ है, उसे मैं कभी नहीं भूलता।"

"मैं भविष्य-वेत्ता नहीं हूँ और न मेरे दिव्य-चक्षु हैं। जितना इन आँखों से देख सकूँ, कानों से सुन सकूँ, वही मेरे पास है। मेरे हाथ, पाँव, आँख, कान जनता है।"

"मेरे प्रभु के सहस्रों रूप हैं। कभी मैं उसका दर्शन चरखे में करता हूँ, तो कभी साम्प्रदायिक ऐक्य में और कभी अस्पृश्यता-निवारण में। और इस तरह जब मुझे भावना जहाँ खींच ले जाती है, उसके अनुसार मैं अपने प्रभु को देखता हूँ और उसके साथ सान्निध्य स्थापित कर लेता हूँ।"

"मेरा विश्व मेरे आसपास का वातावरण है। अगर मैं अपने आस-पास के लोगों की सेवा करता हूँ, तो विश्व अपनी सँभाल खुद कर लेगा।"

अपने जीवन के अविभाज्य अंग सत्य और अहिंसा के बारे में आपने कहा था :

"मैं सत्य को ही परमेश्वर मानता हूँ। सत्यमय बनने के लिए अहिंसा ही एकमात्र मार्ग है।"

"मेरे लिए सत्य से परे कोई धर्म नहीं और अहिंसा से बढ़कर कोई परम कर्तव्य नहीं है।"

लोकतंत्र में अपना अडिग विश्वास जाहिर करते हुए आपने कहा था :

"मैं तो जीवनभर लोकतन्त्रवादी हूँ। जब मेरी भस्म हवा में उड़ जायगी या गंगोत्री में विसर्जित कर दी जायगी, उसके बाद सारी दुनिया कबूल करेगी कि लोकतन्त्रवादियों में मैं शिरोमणि था। यह मैं अभिमान से नहीं कहता, बल्कि नम्रतापूर्वक सत्य का उच्चारण कर कह रहा हूँ। मैंने बारह बरस की कोमल आयु से लोकतंत्र का पाठ पढ़ा है।"

अपने अन्तिम शास्त्र के बारे में उन्होंने कहा था :

"मेरे जैसे आदमी के लिए, जिसे हिंसा नहीं करनी है और जिसने मन, वचन, कर्म से अहिंसक रहने की प्रतिज्ञा की है, आखिरी सहारा आत्म बलिदान का है। मेरे जैसे अल्प मनुष्य को ईश्वर ने जो बुद्धि दी है, उस

निर्णय के अनुसार कड़ा प्रसंग आये, तब उसके लिए प्राणों की बाजी लगा देना ही सबसे बड़ा शस्त्र है ।"

साहित्य एवं कला के सम्बन्ध में बापू कहते हैं :

"जीवन में वास्तविक पूर्णता प्राप्त कर लेना ही कला है । जो उत्तम जीवन जीना जानते हैं, वही श्रेष्ठ कलाकार हैं ।"

"मैं ऐसा साहित्य और ऐसी कला चाहता हूँ, जिसे करोड़ों लोग समझ सकें ।"

अपने लिखने के बारे में एक बार आपने लिखा था :

'मैं कहता हूँ कि मैं जो लिखता हूँ, वह मैं नहीं लिखता; बल्कि ईश्वर लिखवाता है, अक्षरशः सत्य है । अपने 'यंग इण्डिया' के लेख पढ़ता हूँ, तो ऐसा लगता है कि फिर लिखने बैठूँ, तो वैसा नहीं लिख सकता । हर चीज के लिए वातावरण चाहिए ।"

"मैं जो रोज बोलता हूँ, जो बहस करता हूँ, वह भी प्रार्थना ही है, उसीका हिस्सा है । मेरा यह सब कुछ भगवान् के लिए है ।"

"मैंने जो कुछ लिखा है, वह मैंने जो कुछ किया है, उसका वर्णन है । मैंने जो कुछ किया है, वही सत्य और अहिंसा की सबसे बड़ी टीका (व्याख्या) है । उनमें जिनको विश्वास है, वे उनका (सिद्धान्तों का) प्रचार केवल तदनुसार आचरण करके ही कर सकते हैं ।"

कुछ और सूत्र-वाक्य लीजिये :

"मेरा सारा जीवन आदर्श को व्यवहारगत करने में बीता है और अब भी उसी तरह बह रहा है ।"

"मैं खुद को धर्माध्यक्ष नहीं मानता हूँ । सत्य का एक विनम्र पुजारी और शोधक हूँ । मैं तो अहिसा का कलाकार हूँ, ऐसा मेरा दावा है ।"

"मेरा मन्त्र 'श्रीराम' नहीं, 'हे राम' है ।"

"मेरे लिए मित्रों और रिश्तेदारों में कोई फर्क नहीं है ।"

"मेरे शब्दकोष में 'हिंसा' शब्द हो नहीं है ।"

"समझौता मेरे स्वभाव का एक ऐसा अंग है, जो अलग नहीं हो सकता।"

"अवश्य ही मैं तो मरूँगा, तब भी मेरी जबान पर अहिंसा ही होगी।"

"मैं जन्म से ही लड़ाका और जिन्दगीभर बागी रहा हूँ।"

"किसी भी किस्म की बेइज्जती के सामने झुकनेवाला दुनिया में मैं आखिरी शख्स होऊँगा।"

"मेरी आखिरी प्रार्थना तो यही है और रहेगी कि

'हे नाथ, मेरी नहीं, बल्कि तेरी ही इच्छा का साम्राज्य इस जगत् में फैले'।"

आराध्यदेव के दर्शन : १९ :

गांधीजी एक जीवित तीर्थ थे। वह जहाँ कहीं भी रहे, देश के कोने-कोने से अनेक व्यक्ति उनके पावन दर्शनों के लिए आते और उनमें अपने आराध्य के दर्शन करते थे। यहाँ बापू के दर्शनों से सम्बद्ध 'हरिजन सेवक' से कुछ ऐसे ही पावन प्रसंग दे रहा हूँ।

(१)

वह वृद्ध ग्रामवासी !

बात है सन् १९३५ की। एक बार एक वृद्ध ग्रामवासी तन पर मोटी खादी पहने गांधीजी के दर्शनों के लिए आया और सौ-सौ रुपये के दस नोट उनके समक्ष रखकर बोला : "जो सबसे गरीब और सत्पात्र हों, उन्हींके अर्थ यह तुच्छ भेट है। आपसे अधिक पता ऐसे दरिद्रनारायणों का और किसे हो सकता है?"

"यह आपने बड़ा अच्छा काम किया है", कहते हुए जब गांधीजी ने उनसे परिचय पूछा, तो वह बोले : "मैं एक स्कूल में अध्यापक था। अवकाश ग्रहण करने पर मुझे पेन्शन के बजाय सत्ताइस सौ रुपये बतौर इनाम के मिले। उनमें से मैंने सौ रुपये भूकम्प-पीड़ितों के लिए, सौ रुपये आसाम के बाढ़-पीड़ितों के लिए और पाँच सौ रुपये इलाहाबाद में किसानों की सहायता के लिए दिये थे। मैं दस रुपये महीने में अपनी गुजर कर लेता हूँ और एक निःशुल्क संस्कृत पाठशाला खोल ली है। उसमें अपना पूरा समय देता हूँ। अकेला राम हूँ, न किसीकी चिन्ता है, न फिकर।" और दान के हर्षातिरेक से प्रफुल्लित उस वृद्ध पुरुष ने कहा : "मेरे पास अब भी कुछ रुपये जमा हैं, महात्माजी ! मैं किसी दिन वह सब लाकर आपके चरणों पर रख दूँगा। मैं नहीं जानता कि यह रुपया दूँ तो किसे दूँ। मैं तो बस एक आपको जानता हूँ। और आप अनाथ असहाय गरीबों को पहचानते हैं। मैं हृदय से आपका आभारी हूँ।" और अत्यन्त श्रद्धा से गांधीजी के पैर छूकर वह चला गया।

(२)

वह अपरिग्रही दानी !

एक दिन सबेरे एक अत्यन्त अपरिग्रही शुद्धहृदय व्यक्ति गांधीजी के दर्शनों के लिए आया। उसने दौड़कर गांधीजी के पैर पकड़ लिये और उन्हें पकड़े ही रहा। उसकी आँखों से प्रेमाश्रुओं की झड़ी लगी हुई थी और उसे अपनी सुध-बुध नहीं थी। बड़ी मुश्किल से उस प्रेम-दीवाने को उठाकर एक तरफ कर सके। वह तुरंत शांत हो गया और उसने अपनी गीता की पोथी में दबा हुआ सौ रुपये का नोट निकाला और उसे अपने हाथ से कते सूत के साथ रखकर यह कहते हुए प्रेमविह्वल होकर गांधीजी को दे दिया : "मेरी मनोकामना आज पूरी हो गयी।"

"मैंने तुम्हें कहीं देखा है।" कहते हुए जब गांधीजी ने उससे पूछा : "तुम क्या काम करते हो ?" तो वह बोले : "मैं वैसे पैसेवाला आदमी

हूँ, पर अब तो फकीर हूँ। सब छोड़-छाड़ दिया है। अपने तीनों लड़कों को जायदाद बाँट दी है और मैं अब निश्चिन्त हो गया हूँ। सेवा लीजिये। मैं अब स्वतन्त्र हूँ। मुझे अपनी टहल में भंगी का काम दे दीजिये। बस, मैं और कुछ नहीं चाहता।"

"अच्छा, तो तुमने इस तरह अपनी सारी सम्पत्ति अपने तीनों लड़कों में बाँट दी है और मेरे हिस्से की जायदाद कुछ नहीं छोड़ी है!" गांधीजी ने हँसते हुए कहा।

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। सर्वस्व आपका ही है। आपके लिए एक हजार रुपये लाने का मेरा विचार था। लेकिन इस वर्ष घाटा रहा, इस कारण अपने लड़कों से पाँच सौ ही ला सका, शेष बाद में मँगा लूँगा।" यह कहकर उसने बाकी के सारे नोट निकालकर दे दिये।

"तुमने आज मुझे अपना सर्वस्व दे डाला। वे बड़े-बड़े लखपति तो मुझे सौ या हजार रुपये का ही तुच्छ दान देते हैं।" बच्चों की तरह खुशी से उछलते हुए गांधीजी ने कहा: "अपने बेटों से भी तो कहो, क्या वे भी मुझे कुछ देंगे? वे अकेले ही अपनी तमाम सम्पत्ति का उपयोग क्यों करें?"

"क्यों नहीं देंगे? आप विश्वास रखिये, मेरे लड़के भी आपको देंगे। मेरा कुछ नहीं है। सब कुछ आप ही का तो है। आपका धन आपको ही सौंप रहा हूँ। इसमें मेरी कौन-सी प्रशंसा की बात है। आज मेरी सब मनोकामनाएँ सफल हो गयीं, आपके दर्शन पाकर और आपके चरण छूकर। मुझे आज क्या नहीं मिल गया है? मैं आज सब तरह से कृतकृत्य हो गया हूँ। धन्य भाग मेरा आज!" यह कहकर वह सर्वस्व त्यागी पुनः आनन्दमग्न हो गया। वह अपने साथ सिर्फ एक टीन की छोटी-सी सन्दूकची, बिस्तर का छोटा-सा पुलिन्दा, मोटी खादी की मिरजई, खादी की टोपी व धोती लिये था। उसकी सन्दूकची में गीता की पोथी, 'हरिजन सेवक' के अंक, एक जोड़ कपड़े व सूत था।

(३)

वे तीर्थयात्री !

एक बार एलोर के चार सौ तीर्थयात्री सिर्फ गांधीजी के दर्शनों के लिए सेवाग्राम आये। वे गांधीजी से कोई बातचीत नहीं करना चाहते थे, केवल उनका दर्शन करना चाहते थे। उनमें से एक ने कहा : "हम लोगों ने पंढरपुर, नासिक और अन्य तीर्थस्थानों की यात्रा की है। अब हम उत्तर भारत में आये हैं। उत्तर भारत में गांधीजी के सिवा और कोई देवी-देवता नहीं है।"

शाम को वे आये और एक कायदे से चुपचाप बैठ गये। उन्होंने एक-दो भजन गाये, प्रार्थना में भाग लिया, २५०) इकट्ठा करके गांधीजी को भेंट में दिये और शांतिपूर्वक उठकर चले गये। दूसरे दिन उन्होंने लगभग ७००) की खादी खरीदी। वह देखने लायक दृश्य था, जब वे खादीधारी तीर्थयात्री वर्धा की सड़कों पर से निकले।

(४)

वह मरणासन्न दर्शनाभिलाषी !

पुरानी बात है। दिल्ली में एक मरणासन्न रोगिणी थी। रोग से लड़ते-लड़ते शरीर का ह्रास हो गया था। केवल श्वास बाकी था। उसने एक दिन बिड़लाजी से कहा : "क्या गांधीजी के दर्शन भी हो सकते हैं ? जाते-जाते अन्त में उनसे तो मिल लूँ।" गांधीजी दिल्ली के नजदीक नहीं थे, अतएव उन्होंने कह दिया : "देखो, ईश्वरेच्छा।"

दो दिन बाद सूचना मिली—गांधीजी कानपुर से अहमदाबाद जाते हुए दिल्ली से गुजर रहे हैं। दिल्ली गाड़ी बदलने के लिए केवल एक घंटे का समय लगता था। बिड़लाजी निश्चित समय पर स्टेशन पहुँच गये और पूछा : "आप आज ठहर नहीं सकते ?" गांधीजी बोले : "ठहरना मुश्किल है।" फिर पूछा : "ठहरने की क्यों पूछते हो ?" उन्होंने कारण बताया, तो बोले : "चलो, अभी चलें।" और उसी समय

जाड़े में तेज हवा के बीच सुबह-सुबह दिल्ली से दस मील दूर खुली मोटर में उस महिला से मिलने चल दिये।

रुग्णा शय्या पर पड़ी राम-राम जप रही थी। गांधीजी उसकी चारपाई के पास पहुँचे। किसीने कहा : "गांधीजी आये हैं।" उसे विश्वास नहीं हुआ, हक्की-बक्की-सी रह गयी और उसकी आँखों से बूँदें चुपचाप गिर गयीं।

गांधी की कहानी : २० :

गांधीजी भारत ही नहीं, विश्व की महान् विभूति थे। उनकी मृत्यु पर अखिल विश्व में जिस कदर शोक मनाया गया, वह मानवीय इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। उनके निधन के बाद, पूरे दो वर्ष के अथक परिश्रम से सुप्रसिद्ध अमेरिकन पत्रकार श्री लुई फिशर द्वारा लिखित 'गांधी की कहानी' उनके इसी विश्वव्यापी व्यक्तित्व की परिचायक है।

पुस्तक के प्रारम्भ में उनके इसी विश्वव्यापी प्रभाव का जिक्र करते हुए लिखा है :

"जिस दिन महात्माजी की मृत्यु हुई, उस दिन वह वही थे, जो सदा से रहे थे। अर्थात् एक साधारण नागरिक, जिसके पास न धन था, न सम्पत्ति न सरकारी उपाधि, न विशेष प्रशिक्षण-योग्यता, न वैज्ञानिक सिद्धि और न कलात्मक प्रतिभा। फिर भी ऐसे लोगों ने, जिनके पास सरकारें और सेनाएँ थीं, इस अठहत्तर वर्ष के लँगोटीधारी छोटे-से आदमी को श्रद्धांजलि भेंट की। विदेशों से समवेदना के ३४४१ संदेश प्राप्त हुए। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपना झंडा झुका दिया और उसकी सुरक्षा-परिषद् ने अपनी बैठक की कार्यवाही रोक दी। समस्त विश्व में शोक की लहर छा गयी और अखिल मानवता ने अपनी ध्वजा नीची कर दी।

"चाहे पोप पायस हो या तिब्बत के दलाई लामा—कैन्टरबरी के आर्क-बिशप, लन्दन के मुख्य रब्बी, इंग्लैण्ड के बादशाह, राष्ट्रपति ट्रूमैन,

चांग-काई-शेक, फ्रांस के राष्ट्रपति या किसी भी देश के राजनीतिक नेता—सबने गांधीजी की मृत्यु पर सार्वजनिक रूप से शोक प्रदर्शित किया।"

रेडियो पर उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर एक बच्चे ने कहा था : "कितना अच्छा होता, यदि किसीको पिस्तौल बनाना ही न आता।" वे जनमत से कुछ इस कदर तदाकार हो उठे थे कि कुछ व्यक्तियों ने तो उनके निधन का समाचार सुनते ही अपने प्राण विसर्जित कर दिये।

जिस समय उनकी अरथी निकली, उनकी अरथी के साथ करीब १५ लाख व्यक्ति थे और १० लाख व्यक्ति रास्ते के दोनों ओर खड़े थे। जल, स्थल और वायु-सेना के दो सौ व्यक्ति उनकी अरथी की गाड़ी को खींच रहे थे। आसमान से तीन डाकोटा वायुयान उन्हें सलामी दे रहे थे और लाखों की जयघोष के साथ उन पर पुष्प-वर्षा कर रहे थे। चार हजार सैनिक, एक हजार वायु-सैनिक और एक हजार पुलिस के सिपाही वर्दी लगाये अरथी के आगे और पीछे फौजी ढंग से चल रहे थे। इस तरह राजघाट पर उनका अन्तिम संस्कार सम्पन्न हुआ। जो सदेह थे, वे विदेह होकर विश्व के जन-मन में समा गये। उनकी भस्मी देश की समस्त पवित्र नदियों में विसर्जित की गयी। छहों महाद्वीपों से उसके लिए माँग आयी और कुछ तिब्बत, लंका और मलाया भी भेजी गयी। प्रयाग में उनके अस्थि-विसर्जन के समय लोगों ने उन पर इतने फूल बरसाये कि गंगा की धारा पीली पड़ गयी। कहते हैं, संसार के इतिहास में कहीं भी, किसी भी अवसर पर एक साथ इतने व्यक्ति एकत्रित नहीं हुए थे।

आइन्स्टीन के शब्दों में कहें तो—"आनेवाली पीढ़ियाँ मुश्किल से ही विश्वास करेंगी कि कभी कोई रक्त-मांस का ऐसा व्यक्ति भी इस धरती पर चलता-फिरता था।"

फ्रांस के समाजवादी लियो ब्लम के शब्दों में मानो लाखों व्यक्ति महसूस कर रहे थे कि "मैंने गांधी को कभी नहीं देखा, मैं उसकी भाषा नहीं जानता। मैंने उसके देश में कभी पाँव नहीं रखा। फिर भी मुझे

ऐसा महसूस हो रहा है, मानो मैंने कोई अपना और प्यारा आदमी खो दिया हो।"

सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने लिखा : "मैं किसी काल के और वास्तव में आधुनिक इतिहास के, ऐसे किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं जानता, जिसने भौतिक वस्तुओं पर आत्मा की शक्ति को इतने जोरदार और विश्वासपूर्ण तरीके से सिद्ध किया हो।"

उनके विश्वव्यापी प्रभाव और महानता के कारणों का जिक्र करते हुए लिखा है : "सारे राष्ट्र के लिए चिन्ताओं के बीच वह छोटे-से-छोटे व्यक्ति का भी ध्यान रखते थे। उनका विश्वास था कि अगर राजनीति मानव प्राणियों के दैनिक जीवन का एक अभिन्न अंग नहीं है, तो उसका मूल्य शून्य के समान है।"

"ग्राम के भोजन में हरी शाक-सब्जियों की चिन्ता, शोक-संतप्त संबंधी के वेदनाभरे हृदय के लिए परेशानी, किसी लड़की के लिए पति का चुनाव और बीमार किसान के लिए मिट्टी की पट्टी जैसी छोटी-छोटी बातों का भी वे खयाल रखते थे। उनकी डाक में ऐसा कोई पत्र नहीं रहता था, जिसका उत्तर न दिया जाता हो। उनके इतर भारतीय मेह-मानों की सूची एक अन्तर्राष्ट्रीय परिचय-ग्रन्थ के समान थी।

"इस वैज्ञानिक युग में भी उन्होंने 'अणु' को त्यागकर गिरि-प्रवचन को अपना लिया था।

"यही वजह है कि जिससे रोम्यां रोलां जैसे महान् साहित्यिक भी उन्हें संत मानते थे और बर्नार्ड शॉ ने उनके समक्ष अपने को 'छोटा महात्मा' कहा था।"

उनसे अपनी मुलाकात का जिक्र करते हुए लिखा है :

"बाहर से उनमें कोई निरालापन नहीं था। उनका व्यक्तित्व जो कुछ वह थे उसमें, जो कुछ उन्होंने किया उसमें तथा जो कुछ वह कहते थे उसमें था। गांधीजी के समक्ष मैंने कोई भय और झिझक नहीं महसूस

की। मैंने महसूस किया कि मैं एक अत्यन्त मृदु, सौम्य, बेतकल्लुफ, तनाव-रहित, प्रफुल्ल, बुद्धिमान् और अत्यन्त सभ्य व्यक्ति के सामने हूँ। मैंने उनके व्यक्तित्व का चमत्कार भी महसूस किया। अपने व्यक्तित्व के बल से ही उन्होंने बिना किसी संगठन या सरकार या संहार के अपना प्रभाव एक विच्छिन्न देश के कोने-कोने में और वास्तव में एक विभाजित संसार के कोने-कोने में विस्तीर्ण कर लिया था। सीधे सम्पर्क, क्रियाशील उदाहरण तथा संसारभर में उपेक्षित कुछ सरल सिद्धान्तों के प्रति वफादारी, इनके द्वारा वह जनता के पास पहुँचते थे। उनके सिद्धान्त थे–अहिंसा, सत्य तथा साध्य के ऊपर साधन की श्रेष्ठता। उन्होंने जतला दिया कि ईसा तथा कुछ ईसाई-पादरियों, बुद्ध और कुछ ईरानी पैगम्बरों और यूनानी ज्ञानियों का अध्यात्म आधुनिक राजनीति पर प्रयुक्त हो सकता है। वे ईश्वर या धर्म के बारे में उपदेश नहीं देते थे, वह तो स्वयं जीते-जागते धर्मोपदेश थे।''

एशिया की दूसरी महान् विभूति गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गांधीजी की तुलना करते हुए आपने लिखा है :

''गांधीजी और गुरुदेव समकालीन थे। परन्तु गांधीजी गेहूँ का खेत थे और गुरुदेव गुलाब का बाग। गांधीजी काम करनेवाले हाथ थे, गुरुदेव गानेवाली आवाज। गांधीजी सेनापति थे, गुरुदेव अग्रगामी दूत। गांधीजी मुँड़े हुए सिर और चेहरेवाले कृश तपस्वी थे, जब कि गुरुदेव विशालकाय, लम्बे, सफेद बाल-दाढ़ीवाले रईस मनस्वी। परन्तु भारत और मानवता के लिए प्रेम के कारण दोनों एक थे।''

गांधीजी की सिद्धान्त-निष्ठा के बारे में आपने लिखा है : ''वे जब ऑक्सफोर्ड गये, तो वहाँ उनसे एक विद्वान् मण्डली के साथ बातचीत का आयोजन किया गया था, जिसमें प्रोफेसर लिंडसे, गिलबर्ट मरे, प्रोफेसर एस० कूपलैण्ड, सर माइकेल सैडलर, पी० सी० लियॉन जैसे सुलझे हुए दिमागवाले व्यक्ति थे।''

इस दिमागी झड़प का जिक्र करते हुए टामसन ने लिखा है : "तीन घंटे तक उन्हें छाना गया और उनसे जिरह की गयी। यह काफी थका देनेवाली परीक्षा थी। परन्तु वह एक क्षण के लिए भी विचलित या निरुत्तर नहीं हुए। मेरे हृदय में पूर्ण विश्वास जम गया कि परम-आत्म-संयम और अनुद्विग्नता के मामले में संसार ने सुकरात के समय से आज तक इनका समकक्ष पैदा नहीं किया।"

अन्त में जिन विचारों के लिए वे जिये और जिनके लिए उन्होंने अपने प्राण तक विसर्जित कर दिये, उनकी चर्चा करते हुए आपने लिखा है : "गांधी सिर्फ भारत की ही सम्पत्ति नहीं थे, वरन् अखिल विश्व के लिए उनके सन्देश तथा कार्यों का महत्त्व है और उनका वह सन्देश है : "मैं तुम्हें कहता हूँ, अपने दुश्मन को प्यार करो। जो तुम्हें कोसे, उन्हें आशीर्वाद दो। जो तुम्हें घृणा करें, उनकी भलाई करो। और जो तुम्हारे साथ बुरा व्यवहार करें, तुम्हारा हनन करें, उनके लिए प्रार्थना करो। जो तुम्हें प्यार करते हैं, उन्हींको प्यार करोगे, तो उसमें तारीफ क्या होगी !"

विश्वव्यापी व्यक्तित्व : २१ :

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में कहें, तो "अपने खास ढंग से जबर्दस्त ताकतों को जाग्रत करके छोड़ देने की गांधीजी में स्वाभाविक शक्ति थी, जो कि पानी की लहरों की तरह चारों ओर फैल जाती है और लाखों आदमियों पर अपना असर डालती है। चाहे वह प्रतिगामी हों या क्रांतिकारी, उन्होंने हिन्दुस्तान की सूरत तबदील कर दी। उस जनता में, जो हमेशा हाथ जोड़ती और डरती रहती थी, स्वाभिमान और चरित्र-बल भर दिया। उन्होंने आम लोगों में शक्ति और चेतना पैदा की और हिन्दुस्तान की समस्या को संसार की समस्या बना दिया।" एक ऐ

संक्रान्ति-काल में, जब कि रक्तरंजित विश्वव्यापी महायुद्ध के बाद भी महान् शक्तिशाली, सुसंगठित, साम्राज्यवादी राष्ट्र पराजय और नैतिक पराजय के बीच झूल रहे हों, तब संसार के इतिहास में पहली बार महात्मा गांधी ने अहिंसात्मक साधनों से भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बना उसे आजादी दिलायी। रक्तरंजित हिंसात्मक महायुद्ध के दिनों इतिहास भारत की इस अहिंसात्मक क्रांति को याद रखे !

हरएक युद्ध का एक शास्त्र होता है और गांधीजी द्वारा संचालित युद्ध-पद्धति का भी एक शास्त्र है, जिसमें पराजय के लिए कहीं स्थान नहीं है। उसका उद्देश्य है, सामनेवाले को दबाकर नहीं, वरन् उसका हृदय-परिवर्तन कर उसे अपना बना लेना। सत्य का दृढ़ता से प्रयोग और असत्य का नम्रता से विरोध ही उसका मूलमन्त्र है, अतएव उसमें सत्य की पराजय का प्रश्न ही नहीं उठता। आचार्य काका कालेलकर ने इसका बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। वे लिखते हैं : "गांधी के साथ लड़ना मानो पानी के साथ लड़ना है। पानी दीख पड़ता है निराग्रही; किन्तु है अटल जीवनधर्मी। उसे गरम करो, भाप होकर अदृश्य हो जायगा; किन्तु हवा में तुरन्त क्रांति कर देगा। उसे हद से अधिक ठंडा करो, वह पत्थर के जैसा मजबूत बनेगा और मामूली मौलिक नियमों को तोड़कर अपना आकार भी बढ़ा लेगा। काटने से वह टूटता नहीं, जलाने से वह नष्ट नहीं होता। सचमुच गांधीजी की युद्ध-पद्धति दैवी है।"

भगवान् बुद्ध और ईसा के बाद 'सत्य, स्वतन्त्रता और मनुष्यता' के सन्देशदाता के रूप में ऐसा एक भी व्यक्ति अवतीर्ण नहीं हुआ, जो महात्मा गांधी की समता पा सका हो। इतिहास में ऐसे बहुत कम व्यक्ति मिलेंगे, जिन्होंने समस्त संसार से एक साथ इतनी ख्याति और इतना बड़ा स्थान पाया हो। और यही वजह है कि आज गांधी एक व्यक्ति न रहकर सम्पूर्ण भारत का प्रतीक बन गये हैं। यह कहावत प्रसिद्ध हो चली है कि 'जैसा गांधी, वैसा भारत'। उनकी लोकप्रियता का पता तो उन अबोध बालकों की मनोभावनाओं से लगाया जा सकता है, जो किसी भी

देश-विदेश के क्यों न हों, वे जहाँ कहीं भी उनका चित्र देख लेंगे, तुरन्त अपनी भाषा में चिल्ला उठेंगे 'यह गांधी है'।

एक बार एक विश्व-पर्यटक अमेरिकन यात्री ने अपने भारत आने का मुख्य उद्देश्य केवल तीन चीजें देखना बताया था—'हिमालय', 'ताजमहल' और गांधी। लेकिन जब स्वयं गांधीजी यात्री के रूप में विश्व के किसी कोने में जा पहुँचते थे, तो वहाँ भी वे दर्शक होने के बजाय 'दर्शनीय' ही अधिक सिद्ध होते। दुनिया के भू-भाग का कोई समृद्ध शहर हो या भारत का सेवाग्राम जैसा एकान्तस्थान। जहाँ गांधी है, वही हमारी राजधानी, आश्रम, प्रयोगशाला या तीर्थ बन जाता है। और यही वजह है कि गांधीजी आज हमारे समग्र जीवन के केन्द्र-बिन्दु बने हुए हैं। हमारे प्रत्येक विचार और कर्म वहीं से उठते हैं और उसीमें अपनी सम्पूर्णता पा सके हैं। आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक या वैधानिक चाहे जो भी कह लीजिये, हमारा सम्पूर्ण जीवन उसमें आ जाता है। आज तो गांधीजी हमारे 'युगावतार' हैं और गांधीवाद हमारा 'युग-धर्म'। कारण उसमें व्यक्ति से लगाकर विश्व का कल्याण जो निहित है।

अमेरिका के प्रसिद्ध पादरी जॉन हैमान्स हेम्स ने एक बार कहा था कि "मैं जब रोम्यां रोलां की याद करता हूँ, तो मुझे महात्मा टॉल्स्टॉय की याद आती है। जब मैं लेनिन की याद करता हूँ, तो मेरी आँखों के सामने नेपोलियन बोनापार्ट की जीवन-घटनाएँ नाचने लगती हैं। किन्तु जब मैं भारत के महात्मा गांधी का स्मरण करता हूँ, तो मुझे ईसामसीह की याद आती है।" इसी तरह प्रसिद्ध चीनी प्रोफेसर लान-युन शान लिखते हैं कि "हिन्दुस्तान के लोग गांधीजी को महात्मा कहते हैं। यूरोप के लोग उन्हें एक भारतीय संत या तपस्वी समझते हैं। लेकिन चीन के लोग उन्हें 'जीवित बुद्ध' या महाबोधिसत्त्व मानते हैं।" इसे ही यदि एक पंक्ति में कहा जाय, तो यह कि "किसीके जीवनभर में गांधी एक बार भी पैदा नहीं हुआ करता। उनके साथ काम करना एक महान् सौभाग्य है।"

गांधीजी का सन्देश

सन् '४७ में मैंने गांधीजी को एक छोटा-सा पत्र लिखकर पूछा था : "जब चारों ओर असत्य छाया हो और जिन्हें श्रद्धास्पद समझें, वे भी गलत निकल जायँ, तो सत्य के साधक को किस तरह उस अवस्था का सामना करना चाहिए ?"

पत्र लिखकर डाल देने के बाद भी सहसा विश्वास नहीं होता था कि विश्व की अनेक समस्याओं में फँसे इस महापुरुष को दो पंक्ति के इस पत्र का भी जवाब देने की याद रहेगी।

लेकिन दूसरे ही सप्ताह उसी पत्र में बची हुई खाली जगह पर उनका जवाब आया, लिखा था :

"सारी दुनिया के ही आदमियों में श्रद्धास्पद भी रहते हैं। वे गलत नहीं हो सकते, ऐसा नहीं है। वे गलत निकले, यानी हमने गलत जगह श्रद्धा रखी। इस श्रद्धा के साथ भगवान् पर भी पूरी श्रद्धा है, तो डरने की कोई बात नहीं। जो असत् लगे, वह प्रत्यक्ष परमेश्वर में भी प्रतीत हो, तो परमेश्वर को झूठा करने में शर्म क्यों ? सबसे बड़ी श्रद्धा अपने पर होनी चाहिए। **'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु:'** समझो। यही।"

पढ़कर मुग्ध रह गया। श्रद्धा और श्रद्धास्पद का कैसा सूक्ष्म विवेचन है ! इस पत्र को मैं जितनी बार भी पढ़ता हूँ, मुझे एक नवीन प्रेरणा एवं बल मिलता है। कुछ ऐसा लगता है, मानो प्रत्येक शब्द का नया-नया अर्थ खिल रहा हो !

●

सर्व सेवा संघ के प्रमुख प्रकाशन

गांधी-साहित्य

गांधी-शताब्दी सर्वोदय-
साहित्य-सेट ५.००

गांधी-शताब्दी सर्वोदय-
साहित्य-सेट ७.००

महादेवभाई की डायरी
(खण्ड १ से ९) प्रत्येक ८.००

गांधीजी और राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ १०.००

गांधी : जैसा देखा-समझा
विनोबा ने ३.००

बापू की गोद में २.५०

बापू की मीठी-मीठी बातें
(१-२) प्रत्येक १.५०

बापू के चरणों में १.२५

गांधी-पुण्य-स्मरण ०.७५

गांधी : एक राजनैतिक अध्ययन ०.७५

विश्वात्मा महात्मा (नृत्य-नाटिका) ०.४०

आत्मकथा (संक्षिप्त) १.००

बापू-कथा २.५०

गीताबोध व मंगलप्रभात १ ००

मेरे सपनों का भारत (संक्षिप्त) १.५०

हिन्द स्वराज्य १.००

धर्म-अध्यात्म-साहित्य

गीता-प्रवचन २.००

भागवत-धर्म-मीमांसा २.००

भागवत-धर्म-सार १.५०

गीताई चिन्तनिका ५ ००

ख्रिस्त-धर्म-सार ३.००

कुरान-सार (हिन्दी) २.५०

नामघोषा-सार १.५०

नामघोषा-नवनीत १.२५

प्रेरणा-प्रवाह २.००

जपुजी १.५०

ज्ञानदेव-चिन्तनिका १.००

नाममाला (सविवेचन) १.००

राम-नाम : एक चिन्तन ०.६०

ईशावास्योपनिषद् ०.३०

अध्यात्म-तत्त्व-सुधा २.००

तत्त्वबोध २.००

स्थितप्रज्ञ-दर्शन (संशोधित) २.००

स्थितप्रज्ञता १.२५

आश्रम-दिग्दर्शन १.५०

विनयांजलि २.५०

स्थितप्रज्ञ-लक्षण १.५०

जीवन-साधना २.००

सत्य की खोज ३.००

महावीर-वाणी ५.००

ताओ उपनिषद् १.००

धर्मों की फुलवारी ०.७५

वैदिक धर्म क्या कहता है ?
(तीन भाग) प्रत्येक ०.७५

जैन धर्म क्या कहता है ?	०.७५
बौद्ध धर्म क्या कहता है ?	०.७५
पारसी धर्म क्या कहता है ?	०.७५
यहूदी धर्म क्या कहता है ?	०.७५
ताओ और कन्फ्यूश धर्म क्या कहता है ?	०.७५
ईसाई धर्म क्या कहता है ?	०.७५
इसलाम धर्म क्या कहता है ?	०.७५
सिख धर्म क्या कहता है ?	०.७५

लोकनीति-साहित्य

लोकनीति	२.००
सर्वोदय और साम्यवाद	२.००
सर्वोदय-विचार व स्वराज्य-शास्त्र	१.२५
सर्वोदय के आधार	०.२५
सर्वोदय-दर्शन	५.००
अहिंसक क्रान्ति की प्रक्रिया	४.००
लोकनीति-विचार	२.००
लोकतन्त्र : विकास और भविष्य	२.००
लोकतन्त्र को चुनौती	०.३०
लोक-स्वराज्य	०.६०
देश की समस्याएँ और ग्रामदान	१.००
आजादी खतरे में	०.४०
समाजवाद से सर्वोदय की ओर	०.३७
आमने-सामने	०.७५
जनता का राज्य	०.२५
लोक-शक्ति का उदय	०.३५
गाँव-गाँव में अपना राज	[illegible]
सर्वोदय-विचार	०.७५

भूदान-ग्रामदान-साहित्य

ग्रामदान और जनता	१.००
ग्रामदान	२.००
सुलभ ग्रामदान	१.००
ग्रामदान-प्रश्नोत्तरी	०.७५
ग्राम-पंचायत और ग्रामदान	०.३५
एक बनो और नेक बनो	०.५०
प्रखण्डदान	१.००
ग्रामदान : शंका-समाधान	२.००
नवयुग की माँग	०.७५
ग्राम-स्वराज्य : क्यों और कैसे ?	०.१५
तूफान-यात्रा (विनोबा-यात्रा डायरी)	३.००
गाँव जाग उठा	२.००
गाँव का विद्रोह	१.२५
ग्रामदान : प्रचार, प्राप्ति और पुष्टि	१.००
राज्यदान के बाद क्या ? : ग्रामदान से ग्राम-स्वराज्य	०.५०
विनोबा की पाकिस्तान-यात्रा	२.००

ग्राम-संस्कृति-साहित्य

समग्र ग्राम-सेवा की ओर (तीन खण्ड)	६.००
गाँव-आन्दोलन क्यों ?	२.५०
सहजीवी गाँव : इजराइल का एक प्रयोग	३.००

शान्ति-सेना-साहित्य

मोहब्बत का पैग़ाम (कश्मीर-प्रवचन)	२.५०

शांति-सेना २.००
शांति-सेना और विश्व-शांति ३.००
शांति-सेना परिचय ०.७५
सत्याग्रह-विचार और युद्ध-नीति ३.००
सत्याग्रह-विचार १.२५
जहाँ चीनी सेना ने कब्जा किया था २.५०
आजादी की मंजिलें ४.००

नयी तालीम-साहित्य

उर्दू-हिन्दी व्यवहार कोश २.००
जीवन-दृष्टि २.००
कार्यकर्ता क्या करें ? १.२५
आचार्यकुल १.००
शिक्षण और शान्ति ०.५०
बालक अपनी प्रयोगशाला में ५.००
बालक सीखता कैसे है ? ०.६०
माता-पिताओं से १.००
बालवाड़ी ४.००
हमारी आन : हमारी शान २.५०
हमारी राष्ट्रीय शिक्षण २.५०

जीवन-चरित्र-संस्मरण

विनोबा और सर्वोदय-क्रान्ति ५.००
बाबा विनोबा (पाकेट साइज) २.००
किशोरलालभाई की जीवन-साधना २.००
गुजरात के महाराज २.००

वैचारिक-सांस्कृतिक साहित्य

समय और हम (४५० प्रश्नोत्तर) १२.००
समन्वय-संस्कृति की ओर ४.००
तीसरी शक्ति ३.००
क्रान्त दर्शन २.००
मधुकर २.००
स्त्री-शक्ति (प्रेस में)
साहित्यिकों से १.००
सप्त शक्तियाँ १.००
संयम और संतति ०.३५
स्त्री-पुरुष सहजीवन २.५०
मनोजगत् की सैर ६.००

खादी-ग्रामोद्योग-साहित्य

चरखा-संघ का इतिहास ५.००
खादी-विचार ४.००
ग्रामाभिमुख खादी १.२५

बाल-साहित्य

बिल्ली की कहानी ३.००
क से कमला १.००
कुकुड़ूँ कूँ (बाल-गीत) १.००

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी